त्रितीर्थी

(शत्रुंजय, गिरनार, शंखेश्वर)

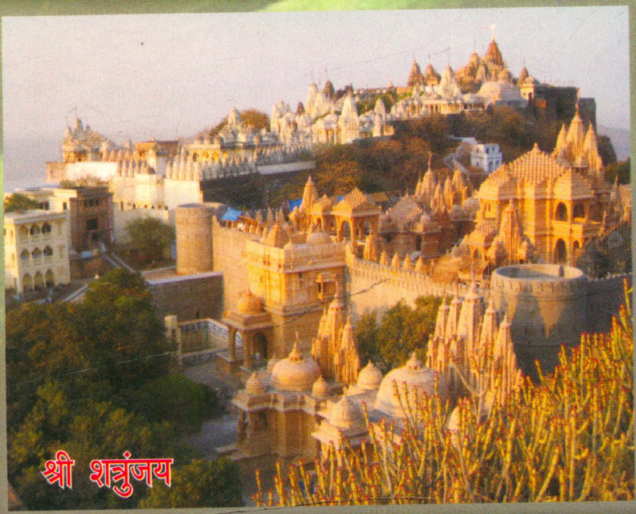

प्राकृत भारती पुष्प - 305

त्रितीर्थी

(शत्रुंजय, गिरनार और शंखेश्वर)

रीना जैन

संपादक

सुरेन्द्र बोथरा

प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

अर्थ सहयोग

श्री जैन श्वेताम्बर संस्था, मालवीय नगर, जयपुर

प्रकाशक:

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक,
प्राकृत भारती अकादमी
१३-ए, मेन मालवीय नगर,
जयपुर-302017
दूरभाष : 0141- 2524827

प्रथम संस्करण 2012

ISBN-13–978-93-81571-08-8

मूल्य : 75/- रुपये

© प्रकाशकाधीन

लेजर टाइप सेटिंग
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

मुद्रक:
राज प्रिन्टर्स, जयपुर
मो. 09982066620

अर्थ सहयोग : श्री जैन श्वेताम्बर संस्था, मालवीय नगर, जयपुर

Tri-Tirthi

Reena Jain / 2012

समर्पण

अनुकम्पा, सेवा के प्रतीक

मार्गप्रणेता

श्रीमान् डी.आर.मेहता

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

तीर्थ किसी भी धर्म व संस्कृति की परम्परा को जीवित रखते हैं समाज को अभ्युत्थान की ओर अग्रसर करने में अपना योगदान देते हैं। प्राचीन तीर्थों का इतिहास भावी पीढ़ियों के लिए दिव्य प्रकाश स्तम्भ के समान समस्त मानव समाज को सुख-शान्तिमय जीवन शैली की ओर प्रेरित करता है। यह प्रकाश जन-जन तक पहुँचे, इस उद्देश्य से हम तीर्थ परिचय की लघु पुस्तकों की एक शृङ्खला आरंभ कर रहे हैं। यह पुस्तक उस कड़ी की प्रथम पुस्तक है। धर्मप्रेमी व सुधी स्वाध्यायियों को तीन पावन लोकप्रिय तीर्थों की (शत्रुंजय, गिरनार व शंखेश्वर) विशेष जानकारी इस पुस्तक के स्वाध्याय से प्राप्त होगी। विवरण, संक्षिप्त इतिहास तथा साधना पद्धति प्रस्तुत पुस्तक **'त्रि-तीर्थी'** में उद्धृत है।

यात्रा से पूर्व यदि तीर्थस्थल की भौगोलिक व ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त कर ली जाए तो यात्रा सहजता से शुद्ध भावप्रधान हो जाती है। जिस वस्तु से हमारा परिचय होता है या हम जिसे जानते हैं, उससे मन का एक अद्‌भुत रिश्ता हो जाता है। जिसे हम मोह या राग कह सकते हैं। इस पुस्तक में तीनों तीर्थों के मूलनायक भगवान आदिनाथ, नेमिनाथ व पार्श्वनाथ के जीवन तथा तीर्थों से जुड़ी सर्वमान्य कथाएँ संकलित की गई हैं। इस पुस्तक का उद्देश्य तीर्थयात्रा के समय श्रद्धापूर्वक पठन सामग्री उपलब्ध करवाना है। आज के युवा, जिन्हें जानने की इच्छाएँ तो बहुत होती हैं, किन्तु क्लिष्ट भाषा में उपलब्ध साहित्य के कारण वे इन जानकारियों से वंचित रह जाते हैं, विशेषकर उनके लिए संक्षेप में तीनों तीर्थों (शत्रुंजय, गिरनार, शंखेश्वर) की जानकारी प्रस्तुत है।

प्रकाशन से जुड़े सभी सहभागियों को हार्दिक धन्यवाद!

देवेन्द्रराज मेहता
संस्थापक एवं मुख्य संरक्षक
प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति में महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित स्थानों और तिथियों को बड़ा भारी महत्त्व दिया गया है। जिन स्थानों पर उनका च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष होता है, जहाँ-जहाँ भी वे विचरण करते हैं, उनके जीवन की विशेष घटना घटती है, साधना करते हैं, सिद्धि पाते हैं, उन सब स्थानों को तीर्थ माना जाता है। जिस स्थान से अथवा जिसके सहारे संसार-सागर से तिरना होता है उसे तीर्थ कहा जाता है।

जैन धर्म में सर्वोच्च पद तीर्थङ्कर है। चतुर्विध संघरूप तीर्थ की स्थापना करने के कारण वे तीर्थङ्कर कहे जाते हैं। इनके द्वारा असंख्यात प्राणियों का निस्तार होता है, धर्म का मर्म प्रकाशित होता है, जिज्ञासु भव्यजन मार्गदर्शन पाते हैं। तीर्थंकर और उनकी वाणी के आश्रय से लाखों-लाखों प्राणी निर्वाण पथ के अनुगामी होते हैं इसलिए उन अनंत उपकारी तीर्थंकरों के नाम स्मरण, पूजा-भक्ति द्वारा अनन्त जन्मों के अनन्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। उनकी स्तवना में हजारों कवियों ने अनेक भाषाओं में अनेक विषयों को लेकर अनेक स्तोत्र, स्तवन-रास, चरित्र काव्यादि रचे हैं। तीर्थङ्करों के जन्मादि महत्त्वपूर्ण तिथियों की शास्त्रीय रूप से पंच-कल्याणक तप के रूप में आराधना की जाती है। इन पंचकल्याणकों के अनेक वर्णन मूर्त्तिकला-चित्रकलादि में चित्रित किए गए हैं। तीर्थंकरों से सम्बन्धित सभी स्थानों को तीर्थरूप में मान्य करके वहाँ की यात्रा करने की प्राचीन परम्परा है। आचाराङ्ग निर्युक्ति तक में इन स्थानों की पूज्यता का उल्लेख है।

प्राचीन काल से उन तीर्थों की यात्रा साधु-साध्वी एवं चतुर्विध संघ तथा श्रावक संघ करते आ रहे हैं। ऐसे बहुत से यात्री संघों का विवरण समय-समय पर लिखा जाता रहा है। यों तीर्थों के माहात्म्य और ऐतिहासिक वृत्तान्त काफी लिखे गए। आवागमन की सुविधा पूर्वापेक्षा बहुत अधिक बढ़ चुकी है अतः यात्री संघ खूब निकलने लगे हैं। तीर्थों की यात्रा का विवरण व प्राचीन इतिहास जानने के लिए लोगों की बहुत उत्सुकता है पर जिस ढंग का और जितने परिमाण में साहित्य प्रकाशन व प्रचार होना चाहिए, वह नहीं हो सका है।

जैन तीर्थों के सम्बन्ध में श्वेताम्बर जैन परम्परा के आगमों, उनकी निर्युक्तियों, चूर्णियों, भाष्यों और टीकाओं में तथा दिगम्बर परम्परा के विभिन्न ग्रंथों यथा-तिलोयपण्णत्ती, पुराण साहित्य एवं कथा ग्रंथों में बहुत कुछ सामग्री प्राप्त होती है। तीर्थों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रचनाओं का प्रारम्भ ईसवी सन् की ११वीं शती से माना जाता है, इसके बाद से दोनों सम्प्रदायों में चैत्य परिपाटी, तीर्थयात्रा विवरण, तीर्थमालाएँ, तीर्थस्तवन आदि अनेक रचनायें निर्मित हुई। जिनप्रभसूरिकृत कल्पप्रदीप अपरनाम विविध तीर्थकल्प इन सभी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ है।

जैन धर्म में तीर्थ एवं तीर्थंकर की अवधारणाएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं और वे जैन धर्म की प्राण हैं। 'तीर्यते अननेति तीर्थः' (अभिधान राजेन्द्रकोश, चतुर्थ भाग) अर्थात् जिसके द्वारा पार हुआ जाता है वह तीर्थ कहलाता है। वास्तविक तीर्थ तो वह है जो जीव को संसार समुद्र से उस पार मोक्षरूपी तट पर पहुँचाता है। हमारे आत्मा के मल को धोकर हमें संसार सागर से पार कराता है। समस्त प्राणियों के प्रति दयाभाव, चित्त की सरलता, दान, संतोष, ब्रह्मचर्य का पालन, प्रिय वचन, ज्ञान, धैर्य और पुण्यकर्म यह सभी तीर्थ हैं (शब्दकल्पद्रुम तीर्थ, पृ. ६२६)। जैन धर्म में तीर्थ के जंगमतीर्थ और स्थावरतीर्थ ऐसे दो विभाग भी किए हैं। विशेषावश्यक

भाष्य में चार प्रकार के तीर्थों का उल्लेख है- नामतीर्थ, स्थापनातीर्थ, भावतीर्थ और द्रव्यतीर्थ।

तीर्थ यात्राओं में श्वेताम्बर परम्पराओं में जो छहरीपालक संघयात्रा की प्रवृत्ति प्रचलित है। उसका पूर्व बीज भी हरिभद्र के विवरण में स्पष्ट रूप से दिखाई देता हैं। आज भी तीर्थ यात्रा में इन छः बातों का पालन अच्छा माना जाता है। एकाहारी, भूआधारी, पादाचारी, श्रद्धाधारी, सचित्तपरिहारी और ब्रह्मचारी।

तीर्थयात्रा का उद्देश्य न केवल धर्म साधना है, बल्कि इसका व्यावहारिक उद्देश्य भी है, जिसका संकेत निशीथचूर्णी में मिलता है। उसमें कहा गया है कि जो एक ग्राम का निवासी हो जाता है और अन्य ग्राम नगरों को नहीं देखता वह कूपमंडूक होता है। इसके विपरीत जो भ्रमणशील होता है वह अनेक प्रकार के ग्राम-नगर, सन्निवेश, जनपद, राजधानी आदि में विचरण कर व्यवहार-कुशल हो जाता है तथा नदी, गुहा, तालाब, पर्वत आदि को देखकर चक्षु सुख को भी प्राप्त करता है। साथ ही तीर्थंकरों के कल्याणक भूमियों को देखकर दर्शन विशुद्धि भी प्राप्त करता है। पुनः अन्य साधुओं के समागम का भी लाभ लेता है और इनकी समाचारी से भी परिचित हो जाता है। परस्पर दानादि द्वारा विविध प्रकार के घृत, दधि, गुड़, क्षीर आदि नाना व्यंजनों का रस भी ले लेता है।

जैन धर्म की अत्यधिक प्राचीनता, इसकी दीर्घायु और अद्यावधि लोकप्रियता, इसके अनेक सिद्धान्तों यथा व्यावहारिक दृष्टिकोण से अहिंसा और सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से स्याद्वाद की समसामयिकता इस धर्म को सहज ही अत्यन्त रोचक बनाते हैं। सामान्यरूप से तीर्थङ्करों के प्रतिमा स्थापना इत्यादि की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई और धीरे-धीरे प्रसिद्ध हो जाने पर इन्हीं प्रतिमाओं और जिनालयों के आधार पर उन तीर्थस्थलों को

तीर्थङ्कर विशेष के जीवन से सम्बद्ध कर लिया गया। इस प्रकार अनेक स्थान जिनका तीर्थङ्करों के जीवन से कोई वास्तविक सम्बन्ध न था, तीर्थ माने जाने लगे, इसके परिणाम स्वरूप आज छोटे-मोटे हजारों तीर्थ जैन समाज में प्रसिद्ध है। समय-समय पर जैन मुनि और श्रावक वहाँ की यात्रा करते रहे और उनका वर्णन भी लिखते रहे। इसी कारण जैन तीर्थों सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री भी बहुत विशाल रूप में पायी जाती है। यद्यपि जैनेतर साहित्य में भी तीर्थों के सम्बन्ध में प्रचुर विवरण प्राप्त होता है, परन्तु उनमें ऐतिहासिक दृष्टिकोण का प्रायः अभाव है अतः इस दृष्टि से जैन साहित्य विशेष महत्त्व का स्थान रखता है।

प्राचीनकाल में आज की भांति साधन सुलभ न होने से मार्ग सम्बन्धी कठिनाई सर्वप्रमुख थी, इसी कारण बड़ी संख्या में लोग संघ बनाकर यात्रा हेतु निकलते थे। यात्री संघों में प्रायः मुनि भी रहा करते थे। ये संघ मार्ग में छोटे-बड़े ग्राम, नगर आदि में ठहरते थे और वहाँ के मन्दिरों के दर्शनादि हेतु जाते थे। विद्वान् मुनिजन संघ के साथ यात्रा करते समय मार्ग के ग्राम-नगर तथा वहाँ के निवासियों का भी वर्णन लिखते थे। इसी कारण तीर्थ-विषयक जैन साहित्य का भौगोलिक दृष्टि से भी बड़ा महत्त्व है। इनमें भारतीय ग्रामों एवं नगरियों के इतिहास सम्बन्धी सामग्री भरी पड़ी है, परन्तु अभी तक विद्वानों का ध्यान इस ओर प्रायः कम गया है अतः देश के अनेक ग्रामों एवं नगरों का बहुत कुछ इतिहास अन्धकार में ही है।

तीर्थ और तीर्थयात्रा सम्बन्धी समस्त उल्लेख निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि में उपलब्ध होते हैं। आचारांग निर्युक्ति में अष्टापद, उर्जयन्त, गजाग्रपद, धर्मचक्र और अहिच्छत्रा को वन्दन किया गया है (आचारांग निर्युक्ति पत्र १८)। इससे स्पष्ट होता है कि निर्युक्ति काल में तीर्थ स्थलों के दर्शन, वन्दन एवं यात्रा की अवधारणा स्पष्ट रूप से बन चुकी थी और इसे पुण्य

कार्य माना जाता था। निशीथचूर्णि के अनुसार यात्रा करने से व्यक्ति की श्रद्धा पुष्ट होती है। यात्राओं के वर्णन ईसा की छठी सदी से मिलना प्रारम्भ होते हैं। तीर्थयात्रा से अध्यात्मिक मूल्यवत्ता के साथ-साथ व्यावहारिक उपादेयता भी है। सहसंघ यात्राएँ करवाने वालों को हृदय से अनुमोदन करना चाहिए।

सर्वाधिक लोकप्रिय व महत्त्वपूर्ण तीर्थों में से तीन तीर्थों संबंधी उपलब्ध सामग्री में से रोचक व प्रेरणास्पद सामग्री का चयन कर यह पुस्तक तैयार की गई है। साथ ही यात्रियों की सुविधा हेतु साधना पद्धति व विधि-विधान भी संक्षेप में दिया गया है।

आचार्य धनेश्वरसूरि, डॉ. शिवप्रसाद, आचार्य गुणरत्नसूरीश्वरजी, अगरचन्द-भँवरलाल नाहटा, साध्वी चन्द्रप्रभाश्रीजी, सुरेन्द्र बोथरा आदि का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके द्वारा लिखित एवं अनुवादित सामग्री का सहयोग मिला तथा उसी के द्वारा इस पुस्तक का उपयोगी संकलन संभव हो सका। आशा है इससे तीर्थयात्री ही नहीं सामान्य पाठक भी लाभान्वित होंगे।

– रीना जैन

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना VII

शत्रुञ्जय तीर्थ **1-52**

ऐतिहासिक महत्त्व 3

शत्रुंजय नदी की महिमा 10

रायण वृक्ष की महिमा 12

संघ सहित शत्रुंजय यात्रा 15

शत्रुंजय के 17 उद्धार 21

शत्रुंजय तीर्थ की महिमा संबंधी कथाएँ 23

शत्रुंजय गिरि पर धर्मकार्य का महाफल 39

चैत्रीपूर्णिमा की महिमा 42

निन्नाणवे यात्रा (छठ्ठ अठ्ठम) की विधि 44

सिद्धाचलजी के 21 खमासमणा 49

गिरनार तीर्थ **53-91**

रैवतगिरिराज गिरनार महातीर्थ 55

गिरनार की महिमा 57

रैवतगिरि-कल्प संक्षेप 62

श्री रैवतगिरिराज गिरनार की गौरवयात्रा 71

श्री गिरनार महातीर्थ की 99 यात्रा की विधि 90

शङ्खेश्वर तीर्थ **93-120**

तीर्थ का ऐतिहासिक वर्णन 95

श्री शंखेश्वर तीर्थ की स्थापना 98

जीर्णोद्धार 100

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन परिचय 108

शंखेश्वर पार्श्वनाथ के चमत्कार 116

स्तुति द्वारा महिमागान 117

नित्य आराधना 118

108 पार्श्वनाथ भगवान के नाम 119

धर्मशाला के संपर्क सूत्र **121-126**

शत्रुञ्जय तीर्थ

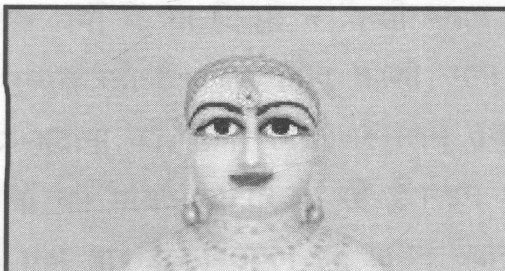

मूलनायक आदिनाथ भगवान

ऐतिहासिक महत्त्व

शत्रुञ्जय तीर्थ भारत के गुजरात प्रान्त के भावनगर जिले के पालीताणा क्षेत्र में स्थित है। यह तीर्थ शाश्वततीर्थ कहलाता है। अतः इसकी यात्रा अवश्य करनी चाहिए। सिद्धगिरिराज एक महान् पावन भूमि है। जगत के अन्य धर्मों में भी किसी न किसी स्थान विशेष को पवित्र माने जाने की परम्परा रही है। जैसे हिन्दू काशी, गंगा हिमालयादि को, मुसलमान मक्का-मदीना को, क्रिश्चियन जेरुसलम तथा बौद्ध, बोधिवृक्ष गया वगैरह स्थानों को पवित्र मानते आ रहे हैं। इन धर्मों के अनुयायी मनुष्य जीवन में एक बार अपने-अपने इन पावन स्थानों में जाकर जन्म को सफल हुआ मानते हैं। जैन धर्म में भी ऐसे कितने ही स्थान पूजनीय व स्पर्शनीय माने गए हैं। जैसे शत्रुंजय, गिरनार, आबू, तारंगा, सम्मेतशिखर आदि। इनमें भी शत्रुंजय गिरिराज को सबसे अधिक श्रेष्ठ महापवित्र एवं पूज्य माना जाता है।

शत्रुंजय कल्प नामक ग्रन्थ में प्रभु श्री महावीर देव इन्द्र से कहते हैं- "यदि कुछ भी ज्ञान हो और यदि पाप का भय हो तो, अन्य सब कदर्थना का त्याग करके श्री आदिनाथ प्रभु से अधिष्ठित पुंडरीक गिरिराज की पुण्यनिश्रा में जा कर हमेशा उनकी आराधना करो।"

हे इंद्र ! दुःषम काल के प्रभाव से अब से चौथे आरे की पूर्णाहुति के बाद लोग अधर्मी, निर्धन, अल्पायुषी, रोगी और कर से पीडित होंगे। राजा अर्थलुब्ध, चोरी करने में तत्पर और अति भयंकर होंगे। कुलवान्

स्त्रियां भी कुशील वाली होंगी। गाँव श्मशान जैसे दिखेंगे। लोग निर्लज्ज, निर्दयी, देव-गुरु के निंदक और दिन प्रतिदिन अतिशय रंक और हीन सत्त्व वाले होंगे। पाँचवें आरे के अंत में इस भरतक्षेत्र में अंतिम दुःप्रसह नामक आचार्य, फल्गुश्री नामक साध्वी, नागिल नामक श्रावक, सत्यश्री नामक श्राविका, विमलवाहन नामक राजा, और सुमुख नामक मंत्री होंगे। दुःप्रसहसूरि के उपदेश से विमलवाहन राजा विमलगिरि तीर्थ पर आकर यात्रा और उद्धार करेगा। उस समय लोग दो हाथ प्रमाण काया वाले और बीस वर्ष के आयुष्य वाले होंगे। उनमें कुछ ही धार्मिक होंगे, बाकी प्रायः बहुत अधर्मी होंगे।

आचार्य दुःप्रसह बारह वर्ष गृहस्थ अवस्था में रह कर और आठ वर्ष चारित्र पाल कर, अंत में अट्ठम तप करके काल करके सौधर्मकल्प में देव होंगे। उनके कालधर्म के बाद (पाँचवें आरे के अंतिम) दिन के पूर्वाण्ह काल में चारित्र का क्षय होगा, मध्यान्ह काल में राजधर्म का क्षय होगा, और अपराण्ह काल में अग्नि का क्षय होगा। इस प्रकार इक्कीस हजार वर्ष का दुःषम काल (पाँचवां आरा) पूरा होगा। फिर उतने ही प्रमाण का एकांत दुःषमा काल (छट्ठा आरा) शुरू होगा। उस समय लोग पशु के जैसे निर्लज्ज, बिल में रहने वाले, और जीने के लिए मत्स्य भक्षण करने वाले होंगे। उस समय शत्रुंजयगिरि सात हाथ का हो जाएगा और फिर उत्सर्पिणी काल में वापस पूर्व के जैसे वृद्धि पाना शुरू करेगा। अनुक्रम से प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ प्रभु के तीर्थ में पूर्व के जैसे उस तीर्थ का उद्धार होगा, पद्मनाभ प्रभु की मूर्त्ति बिराजमान होगी, यह राजादनी (रायण) का वृक्ष भी होगा। इस प्रकार यह सकल तीर्थों में शिरोमणि गिरिराज जिनेश्वर भगवंत के जैसे उदय पा कर कीर्त्तन से, दर्शन से और स्पर्श से भव्य जीवों को सदा तारने वाला रहेगा।

पाप का भार और विकार रूप अंधकार का नाश करने वाला, सैंकडों सुकृतों से प्राप्त होने योग्य, सर्व पीडा को हरने वाला तथा अनुपम

महिमा का पात्र, अतिशय पवित्र और अत्यंत कल्याणकर, पर्वतों में इन्द्र के समान, यह पुंडरीक गिरिराज सदा जय पाता रहेगा। सब इन्द्रियों के संयमपूर्वक रोध से जिनका विवेक जाग्रत हुआ है ऐसे, अपने मन में जिन्होंने सदा वीतराग को धारण किया है ऐसे और जिन्होंने सैंकडों भवों में पुण्य किया हो वैसे राजाओं को भी यदि शुद्ध मन-वचन-काया से इस पुंडरीक गिरि की सेवा मात्र एक बार भी मिल सके तो वे धन्य हो जाते हैं। एक क्षणभर भी यदि इस गिरिराज की छाया में रह कर जो अति दूर जाता है, वह वहाँ भी शत्रुंजय को नहीं प्राप्त करने वाले लोगों में पुण्य से सेवा के योग्य होता है और वह कभी भी जिनेश्वर को छोड दूसरे को नहीं भजता; यह निःशंक बात है। राग-द्वेषरूप वृक्षों में अग्नि जैसा और समता को भजने वाला हो कर इस सिद्धाचल महातीर्थ का आश्रय ले, कि जिससे तू अपने सब निबिड कर्मों को खपा सकता है। अमंद बोध को जाग्रत करने वाला प्राणी जब तक सिद्धाचल महातीर्थ पर जा कर श्री आदिनाथ प्रभु का ध्यान नहीं धरता, तब तक ही पृथ्वी पर घूमता पापरूपी सुभट उसे विकट भय प्रदान करता है और तब तक ही सैंकडों शाखा से दुर्गम, ऐसा यह संसार उसमें अविरत रूप से प्रसार पाता है। मूल से उन्मूलन करने के लिए इन्द्रियों का निरोध कर के संयमी लोग तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरिराज पर रह कर भगवान् श्री आदिनाथ प्रभु की सेवा करते हैं। इस गिरिराज के शिखर, गुफाएं, तालाब, वन, जलकुंड, सरिताएं, पाषाण, मृत्तिका और अन्य जो कुछ भी वहाँ स्थित है, वह अचेतन होते हुए भी महानिबिड पाप का क्षय करता है।

सौराष्ट्र का मुकुट रूप है यह शत्रुंजय पर्वत। वह स्मरण करने मात्र से ही अनेक पापों का नाश करने वाला है। इस तीर्थ के १०८ नाम हैं, जो निम्नानुसार हैं- शत्रुंजय, बाहुबली, मरुदेवा, पुंडरीक, रैवत, शाश्वत, पुष्पदंत, कैलाश, कंचन, कनक, ढंक, लोहित्य, सद्भद्र, तालध्वज, कदमगिरि, स्वर्ग,

नान्दि, तापस, पद्म, उदय, नन्दिवर्द्धन, मुक्तिनिलय, अर्बुद, सुर, महा, महायश, महाबल, महानन्द, महाश्र, महातीर्थ, महापीठ, जयन्त, आनन्द, श्रीपद, श्रेयपद, भव्य, प्रभुपद, अजरामर, हस्तिसेन, माल्यवन्त, विभास, विशाल, हेम, श्रेष्ठ, उज्जवल, यज्ञ, आलम्बन, प्रत्यक्ष, सिद्धपद, वैजयन्त, सिद्धक्षेत्र, सुरक्षेत्र, सुरप्रिय, पर्वतेन्द्र, विमलादि, पुण्यराशि, दृढ़शक्ति, अनन्तशक्ति, अकर्मक, अकलंक, मुक्तिगेह, पृथ्वीपीठ, भद्रपीठ, पातालमुख, सर्वदाभद्राय, सिद्धिराज, सुतीर्थराज, सहस्त्राभ्य, सहस्त्रप्रश्री, सारश्वत, भागीरथ, अष्टोत्तर, नगेश, शतपत्रक, कोटिनिवास, कर्पदिवास, विजयानन्द, विश्वानन्द, सहजानन्द, जयानन्द, श्रुतानन्द, गुणकन्द, अभयकन्द, भद्रंकर, क्षेमंकर, शिवंकर, दुःखहर, यशोधर, मेरुमहिधर, कर्मसुदन, कर्मक्षय, जगतारण, भवतारण, राजशेखर, केवलदायक, इन्द्रप्रकाश, महोदय, कयन्तु, प्रीतिमण्डन, ज्योतिस्वरूप, विजयभद्र, विलासभद्र, अमरकेतु, आत्मसिद्धि, क्षितिमंडलमंडन, सिद्धाचल, सर्वार्थसिद्धि इत्यादि। ये नाम श्री सुधर्मा गणधर द्वारा रचित महाकल्याणकारी महाकल्प में से लिए गए हैं। ये नाम जो भी प्रातःकाल के समय बोले या सुने उसकी समस्त विपत्तियों का क्षय होता है। यह सिद्धिगिरि सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है, सब पर्वतों में उत्तम पर्वत है और सब क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है।

इस अवसर्पिणी काल के आदि में मोक्षदायक प्रथम तीर्थ यह शत्रुंजय ही था, अन्य तीर्थ तो श्री शत्रुंजय तीर्थ के बाद में हुए हैं। पन्द्रह कर्मभूमियों में नाना प्रकार के अनेक तीर्थ हैं, उन सब में इस शत्रुंजय के समान पापनाशक कोई अन्य तीर्थ नहीं है।

पहले आरे में यह सिद्धगिरि तीर्थ अस्सी योजन विस्तार वाला था। दूसरे आरे में सत्तर योजन, तीसरे आरे में साठ योजन और चौथे आरे में पचास योजन विस्तार वाला था। इसके पश्चात् पांचवें आरे में 22 योजन और अंतिम छठे आरे में सात हाथ प्रमाण ही रह जाएगा। इस गिरिराज के निम्न नामों वाले 21 मुख्य शिखर कहे जाते हैं -- शत्रुंजय, रैवतगिरि,

सिद्धक्षेत्र, सुतीर्थराज, ढंक, कपर्दी, लौहित्य, तालध्वज, कदंबगिरि, बाहुबलि, मरूदेव, सहस्त्राख्य भागीरथ, अष्टोत्तर शतकूट, नगेश, सप्त पत्रक, सिद्धराज, सहस्त्रपत्र, पुण्यराशि, सुरप्रिय और कामदायी। इनमें से जो सुप्रसिद्ध हैं, उनमें से कुछ की महिमा यहाँ कही जाती है। उन सर्वप्रसिद्ध शिखरों में मुख्य शत्रुंजय और सिद्धक्षेत्र हैं। मेरु, सम्मेतशिखर, वैभारगिरि, रुचकाद्रि और अष्टापद इत्यादि सभी तीर्थ इस शत्रुंजय गिरि में आ जाते हैं।

इस तीर्थ में रहे युगादिदेव श्री ऋषभदेव स्वामी के चरणकमल की सेवा करने से भव्य प्राणी सर्वत्र सेवा करने योग्य, जगत वन्दनीय और निष्पाप बनते हैं। जो लोग शीतल और सुगंधित जल से श्री युगादिप्रभु का अभिषेक करते हैं, वे पंचम ज्ञान सहित पंचमगति-मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य (श्रीखंड) चंदन से प्रभु की पूजा करते हैं, वे लोग अखंड लक्ष्मी युक्त बन कीर्ति रूपी सुगंध के पात्र बनते हैं। कस्तूरी, अगर और केसर से जो प्रभु की पूजा करते हैं, वे सब जगत में गुरुपद प्राप्त करते हैं।

जो भी भक्ति से प्रभु की अर्चना करते हैं, वे सब तीनों जगत को अपनी कीर्त्ति से सुवासित कर इस लोक में निरोगी होते हैं और परलोक में सद्गति प्राप्त करते हैं। जो भी सुगंधित पुष्पों से आदर सहित पूजा करते हैं, वे सब सुगंधित देह वाले और तीनों लोक के लोगों द्वारा पूजने योग्य बनते हैं। अन्य सुगंधित वस्तुओं से पूजा करने वाले सम्यग्दृष्टि श्रावक समाधि द्वारा इस स्थान पर ही सिद्धपद प्राप्त करते हैं। प्रभु के पास धूप करने से पन्द्रह दिवस के उपवास का फल मिलता है, और कर्पूर आदि महासुगंधित पदार्थों से धूप करने से मासखमण का फल मिलता है। प्रभु की वासक्षेप से पूजा करने से मनुष्य समस्त विश्व को सुवासित करते हैं। वस्त्र रखने से (पूजा में) वे विश्व में आभूषण रूप हो जाते हैं। अखंड अक्षतों से श्री प्रभु की भक्ति करने वाले मनुष्य अखंड सुख-संपत्ति को प्राप्त करते हैं। तथा प्रभुजी को मनोहर फल भेंटने से सफलता प्राप्त करते

हैं। जो प्रभु की स्तुति करते हैं, वे स्वयं स्तुति के योग्य बन जाते हैं। जो दीपक जलाते हैं उनके देह की कान्ति प्रदीप्त हो जाती है। और अत्यन्त हर्ष से प्रमुदित होकर जो नैवेद्य रखते हैं (पूजा में) वे सब आनंद युक्त होकर सुख की मैत्री को प्राप्त करते हैं। आरती उतारने वालों को यश, लक्ष्मी और सुख मिलते हैं और वे आरति प्राप्त करने के बाद किसी दिन भी सांसारिक पीड़ा नहीं पाते।

इस महातीर्थ में श्री पुंडरीक गणधर भगवंत की साक्षी में आदरपूर्वक दस प्रकार के पच्चक्खाण करने वाले पुरुष सभी मनोरथों को विघ्न रहित सफल करते हैं। जो कोई छट्ठ तप (बेला) करे तो सर्व संपत्ति प्राप्त करता है, और अट्ठम तप (तेला) करे तो आठ कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त करता है। दूसरे तीर्थ में सूर्य के बिंब पर दृष्टि जमाकर, एक पैर पर खड़ा होकर और अखंड ब्रह्मचर्य पालते हुए मासखमण करने से जो लाभ प्राप्त होता है, वही लाभ श्री सिद्धगिरि पर एक मुहूर्त मात्र के लिए सर्व आहार का त्याग करने से प्राप्त होता है। इस महातीर्थ पर राग और द्वेष युक्त प्राणी भी अर्हंत का ध्यान करने से निर्मल हो जाता है, और आठ उपवास करने से मनुष्य स्त्री-हत्या के पाप से मुक्त हो जाता है। पाक्षिक तप करने से बालहत्या का पाप नष्ट हो जाता है, और मासखमण से ब्रह्मचारी की हत्या का पाप दूर हो जाता है। इस क्षेत्र में एकादि उपवास के पुण्य से लाख उपवास के प्रायश्चित से मुक्त हो जाता है, और अंत में मुक्ति सुख प्रदान करने वाले बोधि बीज को प्राप्त करता है। श्री जिन मन्दिर में जिन- बिंब को स्नान करवाने से, विलेपन करने से और मालारोपण करने से, अनुक्रम से सौ, हज़ार व लाख मुद्रा के दान का फल प्राप्त होता है।

जिन्होंने इस श्री शत्रुंजय तीर्थ में आकर मुनिजनों को पूजा नहीं, उनका जन्म, धन और जीवन निरर्थक है। जो लोग जिनेश्वर देवों के तीर्थों में, जिनयात्रा में और जैन पर्वों में सुपात्र संयमी मुनियों को पूजते हैं, वे

त्रैलोक्य का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। इसलिए इस तीर्थ में आकर बुद्धिमान प्राणी को संयमी सुपात्र मुनि को पूजना चाहिए, उनकी सेवा करनी चाहिए और उन्हें मानना चाहिए, क्योंकि सुपात्र साधु की सेवा से यात्रा सफल होती है।

अनर्थदंड से विरति, तत्त्वचिंता में आसक्ति, श्री जिनेश्वरदेव की भक्ति, सेवा के प्रति राग, दान में निरन्तर वृत्ति, सत्पुरुषों के चरित्रों का चिंतन और पंच नमस्कार महामंत्र का स्मरण, ये सब पुण्य रूपी भंडार को भरने वाले हैं और भव सागर से तारने वाले हैं। इस कारण उद्यमी पुरुष मोक्षसुख के उपार्जन के लिए इस महातीर्थ में इन सब का आचरण, और साथ में उत्तम ध्यान, देव पूजन और तप आदि सत्कर्म यहाँ अवश्य करें।

शत्रुंजय नदी की महिमा

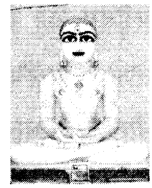

एक समय भरत नरेश्वर और शक्र इंद्र एक आसन पर बैठ कर परस्पर कथामृत के रस में प्रीतिपूर्वक मग्न थे । विमलगिरि के दोनों शिखरों के मध्य में मर्यादा के समान जुडी हुई पवित्र शत्रुंजयी नदी को देख कर भरतनरेश्वर ने शक्र इंद्र से पूछा, ''यह कौनसी नदी है ?'' उत्तर में इंद्र ने कहा, ''हे चक्रवर्त्ती ! यह शत्रुंजया नामक नदी है, और शत्रुंजय गिरिराज के आश्रय से लोक में यह नदी गंगा से भी अधिक फल प्रदान करने वाली है । इस नदी के द्रहों का माहात्म्य जो अलग-अलग कहने में आवे तो उसका यथार्थ वर्णन करने में सचमुच बृहस्पति के भी सो वर्ष चले जावें। पूर्व-चोवीसी में केवलज्ञानी नामके प्रथम तीर्थंकर हो चुके हैं, उनका स्नात्र महोत्सव करने के लिए ईशानपति ने गंगा नदी प्रगट की थी । वह वैताढ्य पर्वत से प्रारंभ हो इस पृथ्वी के अंदर गुप्त रूप से बहती थी । फिर कितने ही काल के बाद वह नदी शत्रुंजयगिरि के पास प्रगट होने से (आने से) वही शत्रुंजया के नाम से प्रसिद्ध हो गई है । जिसके जलस्पर्श से कांति, कीर्त्ति, लक्ष्मी, बुद्धि, धृति, पुष्टि और समाधि प्राप्त होती है, और सिद्धियाँ वश में होती हैं; हंस, सारस और चक्रवाक आदि जो पक्षी इसके जल का स्पर्श करते हैं, उन पक्षियों को भी पाप का मल स्पर्श नहीं करता। इस सरिता की मृत्तिका विलेपन करने से अंग के बडे रोगों को हरती है, और कादंब जाति की औषधि के साथ अग्नि में फूंकने से वह माटी सुवर्णरूप हो जाती है । इस पवित्र नदी के तीर के वृक्षों के फलों का जो स्वाद लेते हैं, और छः मास तक जो इस नदी का जल पीते हैं, वे लोग वात,

पित्त और कुष्टादि रोगों का क्रीडामात्र में नाश कर अपना शरीर तपे हुए सुवर्ण जैसा कांतियुक्त करते हैं। जिसके जल में स्नान करने से शरीर (आत्मा के) में से पाप भी चले जाएं, तो औषध से साध्य, ऐसे वातपित्तादि की तो बात ही क्या है ? स्पर्शमात्र से सर्व पापों को हरने वाली यह शत्रुंजया नदी प्राणियों को सब तीर्थों के फल की प्राप्ति करावाने में समर्थ प्रत्याभूति (जमानत) रूप है। हे भरतेश्वर ! इस नदी के द्रह के प्रभावशाली जल के स्पर्श से शांतनु राजा के पुत्रों ने सुख पाया था।

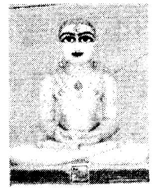

रायण वृक्ष की महिमा

यहाँ रायण का वृक्ष शाश्वत है और भगवान् श्री ऋषभदेव प्रभु से भूषित है। इस वृक्ष में से झरती दूध की धाराएं क्षणमात्र में अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करती हैं। नाभिराजा के पुत्र श्री ऋषभदेव प्रभु का समवसरण इस पवित्र रायण के नीचे कई बार रचा गया था। इस कारण यह वृक्ष तीर्थ से भी उत्तम तीर्थ के समान वंदन करने योग्य है। इसके प्रत्येक पत्ते पर, फल पर और शाखा पर देवताओं के स्थानक हैं, इसलिये इसके पत्र, फल आदि किसी प्रमादवश भी छेदने योग्य नहीं है। जब कोई संघपति भक्ति से भरपूर चित्त से इसकी प्रदक्षिणा करता है, तब यदि यह रायणवृक्ष हर्ष से उसके मस्तक पर दूध की धारा बरसावे, तो उस पुण्यवान का उत्तरकाल (परिणामस्वरूप) दोनों लोक में (इस भव और परभव में) सुखकारी हो जाता है। और यदि वह दूध की धार न बरसावे तो ईर्ष्या के समान हर्ष का विषय नहीं है। सुवर्ण, चांदी और मोती से यदि इसकी पूजा करने का अवसर प्राप्त हो तो वह स्वप्न में आकर सब शुभा-शुभ कह जाता है। शाकिनी, भूत, वेताल और राक्षस आदि जिसके पीछे लग गए हों, ऐसा व्यक्ति भी यहाँ आकर इसका पूजन करे तो उपरोक्त सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। इसकी पूजा करने वाले के शरीर पर एकांतर ज्वर, सर्दी का ज्वर, कालज्वर और विष का प्रभाव नहीं होता। इस वृक्ष के पत्ते, फूल और डालियां आदि अपने आप गिरे हों तो उन्हें लाकर जीव की तरह संचित कर रखना चाहिए; ऐसा करने से वह समस्त अरिष्ट (अनिष्ट) का नाश

करते हैं। इस रायण की साक्षी में जो मैत्री बांधते हैं, वे दोनों व्यक्ति समग्र ऐश्वर्य सुख प्राप्त कर के अंत में परमपद पाते हैं।

रायण वृक्ष के सम्बन्ध में यह कथा प्रसिद्ध है- महामारी का उपद्रव होने से **सुबुद्धि** नामक **मंत्री** ने भरत राजा से प्रणाम कर कहा। अपनी सेना के हाथी, घोडे और पदातियों में अद्‌भुत जाति की रोग पीडा उत्पन्न हो गई है, वह वैद्यों की दिव्य शक्ति वाली औषधियों से भी अगम्य है। हे स्वामी! मेरा अनुमान है कि ये त्रिदोषजनित व्याधि नहीं अपितु कोई आगंतुक मंत्र-तंत्र जन्य दोष से उत्पन्न हुई व्याधि है। वे मंत्री श्रेष्ठ इस प्रकार कह ही रहे थे तभी आकाश को प्रकाशित करते **दो अति तेजस्वी विद्याधर** आकाश पट पर से वहाँ उतरे। सेना के लोगों के ग्रीवा ऊंची कर आदर से देखते हुए वे दोनों विद्याधर महाराज भरत को प्रणाम कर उनके सामने बैठ गए। उन दोनों भद्र आकृति और महातेजस्वी व्यक्तियों को देख चक्रवर्ती ने आदर पूर्वक उनसे पूछा, 'आप कौन हैं?' चक्रवर्ती की मूर्ति और वाणी से रंजित हुए उन दोनों विद्याधरों ने नमस्कार करके प्रसन्न वदन से चक्रवर्ती से कहा, हे स्वामी! हम वायुगति और वेगगति नामके दो विद्याधर हैं। हम आपके पूज्य पिता श्री ऋषभदेव भगवंत को वंदन करने गए थे। वहाँ श्री युगादीश ऋषभदेव के मुख से शत्रुंजयगिरि का महात्म्य सुनकर वहाँ से हम उस उत्तम तीर्थ की स्पर्शना करने गए थे। वहाँ आनंद से सुंदर अट्ठाई उत्सव करके उन प्रभु के पुत्र व चक्रवर्ती, ऐसे आपको देखने हम यहाँ आए हैं। **स्वामी के समान ही स्वामी के पुत्र को मानना चाहिए,** ऐसा क्रम है। इस कारण आप भी श्री युगादीश के समान हमारे सेव्य हैं। इसलिए आपसे पूछते हैं कि हे प्रभु! आपकी यह सेना मंद तेज वाली क्यों दिखाई दे रही है? सूर्य के होते हुए कमल संकुचित हो, कैसे संभव है? चक्रवर्ती ने कहा, हे भाइयों! मेरी इस सेना में मंत्रौषधि से भी असाध्य, ऐसी विविध व्याधियां अकस्मात उत्पन्न हो गई हैं, जिससे सभी

प्राणियों को ग्लानि हो गई है। तब विद्याधर बोले, हे चक्रवर्ती राजा! **शत्रुंजयगिरि** पर एक **शाश्वत रायण वृक्ष** है। वह शाकिनी, भूत तथा दुष्ट देवों द्वारा किए दोष हरने वाला है। उसका प्रभाव श्री युगादीश प्रभु के दास हमने अनेक बार सुना है। उस वृक्ष का तना, मिट्टी, शाखा और पत्ते आदि हमारे पास तैयार हैं। उनके जल का सिंचन करने से आपकी समस्त सेना रोगरहित हो जाएगी। तब चक्रवर्ती की अनुमति से उन विद्याधरों ने तुरन्त ही उस जल से सिंचन किया, जिससे सारी सेना तत्काल निरोगी हो गई। फिर भरत राजा का सन्मान प्राप्त कर, वे दोनों विद्याधर क्षण भर में अपने स्थान को चले गये।

अपनी सेना को निरोगी हुआ देख भरतपति को हर्ष हुआ और हर्ष से प्रफुल्लित मन हो वे अपने मस्तक-कमल को घुमाने लगे। फिर वे प्रीति को मानो बाहर प्रकट करते हों वैसे वाणी से अभिव्यक्त करने लगे, 'अहो! इस **तीर्थाधिराज श्री शत्रुंजय गिरिवर की महिमा वचन से अगोचर है।** तीनों जगत में इस तीर्थ जैसा कोई एक तीर्थ भी ऐसा नहीं है कि **जिसके चिंतन मात्र से उभय लोक के सुख प्राप्त होते हों।**

संघ सहित शत्रुंजय यात्रा

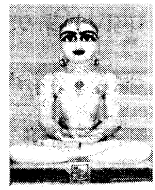

सगर राजा द्वारा संघसहित यात्रा व उसका वर्णन इस प्रकार है-

तीर्थमार्ग में प्रत्येक पुर में और प्रत्येक गाँव में, श्री जिनेश्वर की पूजा करते, मुनिजनों को वंदन करते और दान देते सगर राजा अनुक्रम से श्री सिद्धाचल के पास आ पहुंचे । वहाँ आनंदपुर नगर में चक्री ने बहुत राजाओं के साथ तीर्थ की, प्रभु की तथा संघ की पूजा और साधर्मिक वात्सल्य बडे आदर से किए । फिर देवालय को आगे करके संघ के साथ महोत्सवपूर्वक राजा ने उस तीर्थ की तीन प्रदक्षिणा की । इसके बाद चौदह नदियों में से तीर्थजल को एकत्र कर, हर स्थान पर मार्ग बनाते हुए, संघ गिरि के ऊपर चढा । पहले सगर राजा पूर्व दिशा से गिरि पर चढे और फिर कौतुक वाले सब पुरुष अनेक मार्गों से गिरि पर चढने लगे । चक्रवर्ती गिरि पर आए तब इन्द्र भी प्रीति से वहाँ आया । दोनों रायण के वृक्ष तले परस्पर मिले ।

अब जह्नु का पुत्र भगीरथ सगर चक्रवर्ती की आज्ञा से सेना के साथ अष्टापद गिरि पर पहुंचा । वहाँ अपने पिता और काकाओं की दहन हुई भस्म देख कर भगीरथ अत्यंत दुःखाकुल हो कर सेना सहित मूर्च्छित हो गया । फिर से मिला है चैतन्य जिसको, ऐसे उस सत्त्वशाली ने शोक छोड दिया और भक्ति से पूजापूर्वक नागदेव (ज्वलनप्रभ) की आराधना की। उसकी अतिशय भक्ति से संतुष्ट हुए ज्वलनप्रभ कंचन के कुंडल चमकाता, नागकुमारों के साथ वहाँ आया । भगीरथ ने गंधमाल्य और स्तुति से उसका

पूजन किया। तब हृदय में हर्ष प्राप्त कर नागपति ने उस राजकुमार को कहा, "हे भगीरथ ! मैंने जह्नु कुमार आदि को खाई खोदने के कार्य से मना किया, तो भी वे माने नहीं, और उस कार्य से संपूर्ण नागलोक के नाश के भय से मैंने उनको जला कर भस्म किया है। उन्होंने पूर्व में वैसा कर्म उपार्जित किया था। तो अब मेरी आज्ञा से, हे भगीरथ ! तुम उनकी उत्तरदेह क्रिया करो, और पृथ्वी को डुबाने वाली इस गंगा नदी को मुख्य प्रवाह में ले जाओ।" नाग राजा प्रीतिपूर्वक उसे इस प्रकार निर्देश दे कर अपने स्थान को चले गए। फिर भगीरथ ने **अपने पूर्वजों की** वह भस्म गंगा में डाली, तब से जगत में **पितृक्रिया** में यह व्यवहार प्रवर्तित हुआ है। पितरों की उत्तरक्रिया करके भगीरथ, कुमार्ग पर चलती नारी को मार्ग पर लावे वैसे, गंगा के उन्मार्गी प्रवाह को दंडरत्न से मुख्य मार्ग में लाया। वहाँ लोगों के मुख से सगर राजा को शत्रुंजय तीर्थ गया हुआ जान कर, वह वहाँ से उसी तरफ चला और उत्तरोत्तर प्रयाण कर के गिरिराज पर आ पहुंचा। उस समय वहाँ रायण वृक्ष के नीचे इन्द्र और चक्रवर्ती के चरणों में नमन करते उस भगीरथ का उन दोनों ने आलिंगन किया। फिर हर्षित हो उन्होंने भरतराजा के जैसे उस तीर्थ में भक्ति से श्री आदिनाथ प्रभु का स्नात्रपूजादि महोत्सव किया। मरुदेवा, तथा बाहुबलि शिखर पर, और तालध्वज, कादंब, हस्तिसेन इत्यादि सब शृंगों पर भी उन्होंने जिनपूजा की। गुरुमहाराज के कहने से उन्होंने वहाँ मुनिभक्ति, अन्नदान, आरती, महाध्वज, तथा इन्द्रोत्सव (इन्द्रपूजा करके छत्र व चामरों को रखना) और रथ, पृथ्वी तथा अश्वों का दान किया। फिर भरत के बनवाए प्रासादों को देख इन्द्र ने स्नेहपूर्वक धर्म के सागर समान सगर राजा से कहा, "हे चक्रवर्ती ! इस शाश्वत तीर्थ में तुम्हारे पूर्वज भरतराजा का यह पुण्यवर्द्धन कर्तव्य देखो, भविष्य में काल के माहात्म्य से विवेकरहित, अधर्मी, अति लोभांध, तीर्थ का अनादर करने वाले, और मलिन हृदय वाले लोग मणि, रत्न, चाँदी और

सुवर्ण के लोभ से इस प्रासाद की अथवा प्रतिमा की कदापि आशातना करेंगे, इसलिए जह्नु के जैसे तुम भी इस प्रासाद की रक्षा का कुछ उपाय करो । तीनों जगत में तुम्हारे जैसा कोई समर्थ पुरुष इस काल में नहीं है।" यह सुन कर सगर राजा चित्त में विचार करने लगे कि, 'मेरे पुत्र सागर के साथ मिली गंगा नदी लाए; तो मैं उनका पिता हो कर यदि सागर को लाऊं तो उनसे विशेष होऊं, नहीं तो मानहीन हो जाऊं ।' ऐसे आवेश के वश में इन्द्र के सहेतुक वचन याद कर के सगर राजा क्षणभर में यक्षों द्वारा सागर को वहाँ लाए । उस समय लवण समुद्र का अधिष्ठाता देव अधर में अंजलि जोड कर चक्रवर्ती को प्रणाम करके साम वचन से बोला, "हे चक्रवर्ती ! कहो मैं क्या करुं ?" उस समय अवधिज्ञान से जिसने जिनवचन स्मरण किया है, ऐसे इन्द्र ने आकुल वाणी बोलते हुए कहा, "हे चक्री ! विराम लो, विश्राम करो । जैसे सूर्य बिना दिवस, पुत्र बिना कुल, जीव बिना देह, दीपक बिना गृह, विद्या बिना मनुष्य, चक्षु बिना मुख, छाया बिना वृक्ष, दया बिना धर्म, धर्म बिना जीव और जल बिना जगत्; वैसे ही इस तीर्थ बिना समस्त भूतसृष्टि निष्फल है। अष्टापद पर्वत का मार्ग रुंध गया, अब यही तीर्थ प्राणियों को तारने वाला है । किन्तु यदि समुद्र के जल से इस तीर्थ का मार्ग भी रुंध गया, तो फिर इस पृथ्वी पर दूसरा कोई तीर्थ प्राणियों को तारने वाला मेरे देखने में नहीं आता । **जब तीर्थंकर देव तथा जैनधर्म के श्रेष्ठ आगम पृथ्वी पर नहीं रहेंगे, तब मात्र यह सिद्धगिरि ही लोगों के मनोरथ को सफल करने वाला होगा ।"** इन्द्र की ऐसी वाणी सुन कर चक्रवर्ती ने लवणदेव से कहा, "देव ! मात्र निशानी के लिए समुद्र यहाँ से थोडी दूर रहे और तुम स्वस्थान को जाओ ।" इस प्रकार उसे विदा करने के बाद जिसका मन प्रसन्न हुआ है, ऐसे सगर राजा ने इन्द्र से मलिन अध्यवसाय वाले पुरुषों से इस तीर्थ की रक्षा का उपाय पूछा । इन्द्र ने कहा, "हे राजा ! प्रभु की ये रत्नमणिमय

मूर्तियां सुवर्ण गुफा में रखवा दो। वह गुफा देवताओं को भी अप्राप्य, ऐसा प्रभु का एक कोश (भंडार) है और अभी सब अर्हंतों की मूर्तियां सोने की बनवाओ और प्रासाद सोने और चाँदी के बनवाओ फिर प्रासाद से पश्चिम की तरफ रही सुवर्ण गुफा के जो रसकूपियां और कल्पवृक्ष थे, वे इन्द्र ने बताए। तब वहाँ पहुँच जाकर प्रभु की मूर्तियों को यत्न से ले जा कर चक्रवर्ती ने उन में पधराई और उनकी पूजा के लिए यक्षों को तुरंत आज्ञा दी। फिर इन्द्र को साथ ले कर सगर राजा ने अर्हंतों के प्रासाद प्रस्तर व चाँदी के और मूर्तियां सुवर्ण की बनवाईं। सुभद्र नाम के शिखर पर दूसरे तीर्थंकर श्री अजितनाथ का चाँदी का प्रासाद बहुत भावपूर्वक बनवाया। वहाँ ज्ञानवान गणधरों, श्रावकों और देवताओं ने मिल कर पूजापूर्वक विशाल प्रतिष्ठामहोत्सव किया। इस प्रकार इस गिरि का सगर राजा द्वारा यात्रा का उल्लेख प्राप्त होता है। शत्रुंजय तीर्थ की यात्रा तलहटी से प्रारम्भ हो निम्न टूंकों व चरण पादुकाएं करते हुए पूर्ण करनी चाहिए-

जय तलहटी, श्री पुण्डरिकस्वामी की चरण पादुकाएँ, श्री अजितनाथजी की चरण पादुकाएँ, श्री गौतम स्वामी की चरण पादुकाएँ, श्री आदीश्वर भगवान की चरण पादुकाएँ, श्री शान्तिनाथ की चरण पादुकाएँ, सरस्वती मन्दिर, श्री धर्मनाथ, कुन्थुनाथ एवं नेमिनाथ की चरण पादुकाएँ, बाबू का मन्दिर, जल मन्दिर, रत्न मन्दिर, बाबू मन्दिर के मूलनायकजी, समवसरण मन्दिर, प्रथम विश्राम, दूसरा विश्राम, भरत चक्रवर्ती की चरण पादुकाएँ सिद्धाचल, इच्छा कुण्ड, श्री ऋषभदेव, नेमिनाथ एवं वरदत्त गणधर की पादुकाएँ, लीली परब तीसरा विश्राम, आदीश्वर की चरण पादुकाएँ, कुमार कुण्ड, हिंगलाज का चढ़ाव, हिंगलाज देवी, चौथा विश्राम कलिकुण्ड पार्श्वनाथ की चरण पादुकाएँ, पाँचवा विश्राम, महावीर स्वामी की चरण पादुकाएँ, शाश्वत जिन की चरण पादुकाएँ व छाला कुंड, श्री पूज्य की टूँक, श्री पूज्य की टूंक से पालीताना का दृश्य, श्री पद्मावती देवी के ऊपर

श्री पार्श्वनाथ की पाँच फणों से युक्त प्रतिमा, द्राविड़, वारिखिल्लजी, अइमुत्ता एवं नारदजी की प्रतिमाएँ, द्राविड-वारिखिल्लजी, अइमुत्तामुनि, नारदजी, हीराबाई का कुण्ड, राम-भरत-थावच्चापुत्र-शुक्राचार्य व शैलाकाचार्य की ५ मूर्तियाँ, राम-भरत, थावच्चापुत्र, शुक्राचार्य, शैलकाचार्य, भूखणदास का कुण्ड, श्री आदीश्वर की चरण पादुकाएँ, सुकोशल मुनि की चरण पादुकाएँ, नमि-विनमि की चरण पादुकाएँ, हनुमान धारा-छट्ठा विश्राम, श्री आदीश्वर की चरण पादुकाएँ, हनुमान धारा से दो रास्ते, जाली, मयाली एवं उवयाली, रामपोल-सातवाँ विश्राम, रामपोल में प्रवेश, पाँच शिखर युक्त जिनालय, श्री मोतीशा सेठ की टूँक, कुन्तासर कुंड, सगाल पोल, नोंघणकुण्ड, कार्यालय, दोलाखाडी, वाघण पोल, शिलालेख, विमलवसही-दादाजी की टूँक, श्री शान्तिनाथजी का जिनालय, श्री चक्केसरी देवी, जिनालयों की श्रेणियाँ, बायी ओर की श्रेणी, नेमि चौरी, नेमि चौरी के ऊपर का दृश्य, २ पुण्य-पाप की खिड़की, कुमारपाल महाराजा का मंदिर, सूरज कुण्ड, दाहिनी ओर की जिनालय श्रेणी, कवडयक्ष, आचार्य धनेश्वर सूरीश्वरजी म.सा., कपडवंज का जिनालय, वीर विक्रमशी का बलिदान, हाथीपोल, रतनपोल, आदीश्वर दादा का दरबार, दादा के मन्दिर का विशाल शिखर, प्रथम प्रदक्षिणा, सहस्रकूट, १४५२ गणधरों की पादुकाएँ, सीमंधर स्वामी, अंबिका देवी, पू. आचार्य देव श्री विजयानंद सूरीश्वरजी म.सा., नवीन आदीश्वरजी, समराशा सजोडे, सम्मेतशिखरजी तीर्थ, पाँच भाईयों का जिनालय, श्याम नेमिनाथ प्रभु, श्री अष्टापदजी तीर्थ, प.पू.आ. हीरविजय सूरीश्वरजी म.सा., रायण वृक्ष, रायण चरण पादुकाएँ, सर्प-मोर, सिंह-हाथी, नमि-विनमि, भरत बाहुबली, विजयसेठ-विजया सेठानी, चौदह रत्नों का जिनालय, चमत्कारी सुपार्श्वनाथ भगवान, नई टूंक, नई टूंक में पुंडरिक स्वामी, गंधारिया चौमुखजी, गणधर पुण्डरिक स्वामी का मन्दिर, दादाजी का विशाल जिनालय, नौ टूँक, नौ टूँकों की भावयात्रा, दूसरी

मोतीशा टूँक, विशाल मोतीशा टूँक का भीतरी दृश्य, मानो मन्दिर की नगरी हो, मरुदेवा माता व नंदन ऋषभकुमार, तीसरी बालाभाई की टूँक, अद्भुतजी-आदीश्वरजी, श्री शांतिनाथजी, चौथी प्रेमाभाई मोदी की टूँक, पार्श्वनाथजी के कलात्मक गोख, तीन पुतलियों का मूक उपदेश, पाँचवी हेमाभाई की टूंक, छट्ठी उजमऊई की टूँक, सातवी साकरवसी टूंक, आठवी छीपासी टूंक, छीपावसी टूंक में श्री आदीश्वर भगवान, छीपावसी टूंक में एक गुम्बज का कलात्मक दृश्य, पांडवो की प्रतिमाएँ, कुंती और द्रौपदी, नौवी सवा सोमा की टूँक, २५०० चरण पादुकाएँ, मरुदेवा का मंदिर, तरशी केशवजी की टूँक, अंगारशा पीर, चेतन का संकल्प, भाता-खाता, घेटीपाग की यात्रा, चौबीश तीर्थंकरों की देहरी, घेटी पाग की देहरी, छः कोस की प्रदक्षिणा की भावयात्रा, देवकी के छः पुत्र, उल्का-जल, श्री अजितनाथ एवं श्री शान्तिनाथ की देहरियाँ, चिल्लण-तालाब, रत्न की प्रतिमा, सिद्धशिला, भाड़वा का पर्वत, सिद्धवड़। यात्रा सम्पूर्ण।

शत्रुंजय के १७ उद्धार

- ➡ प्रथम उद्धार महाराजा भरत ने कराया।
- ➡ दूसरा उद्धार भरत चक्रवर्ती की आठवीं पाट पर हुए राजा दण्डवीर्य ने कराया।
- ➡ तीसरा उद्धार श्री सीमंधर स्वामी के उपदेश से एक सौ सागरोपम व्यतीत होने पर ईशानेन्द्र ने कराया।
- ➡ चौथा उद्धार एक करोड़ सागरोपम काल व्यतीत होने के पश्चात् चौथे देवलोक के इन्द्र माहेन्द्र ने कराया।
- ➡ पाँचवाँ उद्धार दस करोड़ सागरोपम काल व्यतीत होने के पश्चात् पाँचवे देवलोक के इन्द्र ब्रह्मेन्द्र ने कराया।
- ➡ छट्ठा उद्धार उसके पश्चात् एक करोड़ लाख सागरोपम व्यतीत होने पर भवनपति के असुर कुमार निकाय के इन्द्र चमरेन्द्र ने कराया।
- ➡ सातवाँ उद्धार श्री अजितनाथ भगवान के शासन में चक्रवर्ती सगर ने कराया।
- ➡ आठवाँ उद्धार श्री अभिनन्दन भगवान के शासन में व्यन्तरेन्द्र ने कराया।
- ➡ नवाँ उद्धार श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के शासन में मुनिवर श्री चन्द्रशेखर के उपदेश से उनके पुत्र राजा चन्द्रयशा ने कराया।

- दसवाँ उद्धार श्री शान्तिनाथ भगवान के पुत्र चक्रायुध ने कराया।
- ग्यारहवाँ उद्धार श्री मुनिसुव्रत स्वामी के तीर्थ में रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी ने कराया।
- बारहवाँ उद्धार श्री नेमिनाथ भगवान के शासन में पाण्डवों ने कराया। इस प्रकार मुख्य बारह उद्धार चौथे आरे में हुए। बीच-बीच में छोटे-छोटे अनेक उद्धार होते रहे हैं। तत्पश्चात् पाँचवे आरे में निम्नलिखित चार बड़े उद्धार हुए हैं।
- तेरहवाँ उद्धार श्रुतज्ञानी वज्रस्वामी के उपदेश से विक्रम संवत् १०८ (५१ ईस्वी) में जावडशा ने कराया।
- चौदहवाँ उद्धार विक्रम संवत् १२१३ (११५६ ई.) में श्री कुमारपाल राजा के समय में श्रीमाली जाति के मंत्री श्री बाहड़ ने कराया।
- पन्द्रहवाँ उद्धार संवत् १३७१ (१३१४ ई.) में श्री समराशा ओसवाल ने कराया।
- सोलहवाँ उद्धार संवत् १५८७ (१५३० ई.) में श्री करमाशा ओसवाल ने कराया। उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूलनायकजी की प्रतिमा इस समय विद्यमान है और उनका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त है।
- सत्तरहवाँ उद्धार - पाँचवे आरे के अन्त में श्री दुप्पसहसूरीश्वरजी महाराज के उपदेश से राजा विमलवाहन करायेंगे और वह इस अव सर्पिणी का अन्तिम उद्धार होगा।

शत्रुंजय तीर्थ की महिमा संबंधी कथाएँ

१. कोढ़ी ब्राह्मण की कथा

अनेक देवताओं से सेवित श्री युगादि प्रभु अभी श्रीप्रभ उद्यान में पधारे। एक दिन अनंत नामक नागकुमार देव के साथ धरणेंद्र वहाँ आया और जगद्गुरु को नमन करके उसने प्रश्न किया, 'भगवान्! सब देवों में इस अनंत की देह की कांति इतनी अधिक क्यों है?' यह प्रश्न सुनकर प्रभुश्री ने फरमाया, 'आज से पूर्व चौथे भव में अनंत देव आभीर जाति में उत्पन्न हुआ था और उस अवस्था में मानो उत्कृष्ट पाप का पोषण करने के लिए जन्मा हो, वैसे वह निरंतर रूप से मुनियों को दुःख देता था। वहाँ से मृत्यु प्राप्त कर नरक में विविध वेदनाएं भोगकर वह सुग्राम नामक गाँव में कोढ रोग से पीड़ित एक ब्राह्मण बना। एक बार उसने मेरे सुव्रत नामक शिष्य मुनि से अपनी देह में कोढ होने का कारण पूछा। तब उन्होंने कहा कि पूर्व भव में मुनिराजों को पीड़ा देने से तू कोढी हुआ है। उत्तम पुरुषों के लिए मुनि महात्मा आराधना करने योग्य हैं। कभी भी मुनिराज की विराधना करना उचित नहीं होता। मुनि तो क्षमावान होने के कारण क्षमा करदें तथापि उनको दुःख देने वाले को तो उस पाप की परंपरा भोगनी ही पड़ती है। मुनि का सन्मान करना स्वर्गादि उत्तम गति प्रदान करता है और अपमान करने से मूल में लगी अग्नि के समान वह अनंत कुलों को जला डालता है। सुव्रत मुनि के इस कथन के बाद उस ब्राह्मण ने अपने कोढ रोग के नाश का उपाय पूछा। तब मुनि ने कहा- तू भावनापूर्वक शत्रुंजय गिरि की सेवा कर। उस तीर्थ में राग-द्वेष रहित और समतारस युक्त

होकर रहने से पाप कर्म का क्षय करके तू रोग से मुक्त होगा। जैसे गाढ तपश्चर्या के प्रभाव से वज्रलेप हुए पापकर्मों से प्राणी मुक्त होता है वैसे ही पुंडरीक गिरिराज की भावपूर्वक सेवा से भी आत्मा पाप कर्मों से मुक्त होती है। इस तीर्थ के महात्म्य से वहाँ रहने वाले तिर्यंच भी प्राय: पापमुक्त और निर्मल हृदय वाले होकर अच्छी गति प्राप्त करते हैं। इस गिरिराज के स्मरण से सिंह, अग्नि, समुद्र, सर्प, राजा, विष, युद्ध, चोर, शत्रु और महामारी के भय भी नाश पाते हैं। उग्र तप और ब्रह्मचर्य से जो पुण्य होते हैं वे शत्रुंजयगिरि की निश्रा में विवेकपूर्वक यतना से रहने वाले को प्राप्त होते हैं। श्री विमलाचल के पुण्य दर्शन से इन तीनों लोकों में जो कोई भी तीर्थ हैं उन सबों के दर्शन हो जाते हैं।'

इस प्रकार सुव्रत मुनि के मुख से तीर्थ महिमा सुनकर वह ब्राह्मण पुंडरीक गिरिराज की यात्रा को गया। वहाँ मुनि के कथनानुसार व्यवहार करने से अनुक्रम से वह रोग रहित हो गया। अंत में विशेष वैराग्य से अनशन व्रत द्वारा मृत्यु प्राप्त कर, उस ब्राह्मण का जीव अद्‌भुत कांति धारण करने वाला यह अनंत नाम का नागकुमार देव बना है, और तीर्थ सेवा के प्रभाव से इस भव से तीसरे भव में यह देव कर्मों का क्षय करके अनंत चतुष्टय प्राप्त कर मुक्ति सुख प्राप्त करेगा।

यह सुनकर वह अनंत नागकुमार देव शत्रुंजय गिरि पर गया और वहाँ अष्टान्हिका महोत्सव करके भक्तिपूर्वक तीर्थ का स्मरण करता हुआ वह देव अपने स्थान को गया। अहो! इन तीनों भुवन में शत्रुंजय जैसा कोई उत्तम तीर्थ नहीं है, कि जिसके स्पर्श मात्र से विपत्तियां दूर चली जाती हैं।

२. त्रिविक्रमराजा की कथा

इस भरत क्षेत्र में श्रावस्ती नगरी में त्रिशंकु का पुत्र त्रिविक्रम नाम का एक राजा था। वह एक बार उद्यान में जाते हुए मार्ग में रहे वटवृक्ष

के नीचे आराम करने बैठा था। वहाँ उसने अपने मस्तक पर क्रूर शब्द करता एक पक्षी देखा। उसके कटुशब्द से क्षुब्ध होकर राजा ने उसे उड़ाने की चेष्टा की, पर वह उड़ा नहीं। तब क्रोधित होकर राजा ने बाण से उस पक्षी को बींध डाला। फिर धरती पर गिरे और शिथिल होकर तड़पते उस पक्षी को देखकर राजा को कुछ पश्चाताप हुआ। वह वहाँ से लौटकर अपने नगर में आया। उस पक्षी का जीव आर्त्तध्यानपूर्वक मृत्यु प्राप्त कर किसी वन में भील के कुल में उत्पन्न हुआ और वह भीलकुमार बालपन से ही शिकार करने लगा।

एक बार कोमल भाव वाले त्रिविक्रम राजा ने धर्मरुचि नाम के मुनि के पास भाव सहित दयामय धर्म इस प्रकार सुना, दया ही परम धर्म है, दया ही परम क्रिया है और दया ही परम तत्त्व है। इसलिए, हे भद्र! दया को भज! यदि दया नहीं हो तो उसके बिना दान, ज्ञान, निर्ग्रंथता आदि सब व्यर्थ है और योगचर्या भी अयोग्य है।' कान के लिए अमृत समान, ऐसे धर्म को सुनकर त्रिविक्रम राजा के मन में दया का उदय हुआ, और अपने द्वारा इससे पूर्व क्रूरतापूर्वक मार दिये प्राणियों को भी वह पश्चाताप के साथ याद करने लगा। उसे इस प्रकार पश्चाताप हुआ, 'अहो! अज्ञान के वश में होकर मैंने पूर्व में ऐसा दुराचरण किया है कि जिस से दुःसह, ऐसे विविध प्रकार के अतिशय दुःख प्रदान करने वाले कष्टों को मुझे भवोभव तक सहन करना पड़ेगा। इसलिए कीचड़ में से कमल और माटी में से सोने की तरह इस असार देह में से सार रूपी व्रत को मैं ग्रहण करूँगा। ऐसे विचार कर उस त्रिविक्रम राजा ने मुनिराज को नमस्कार करके आदरपूर्वक व्रत लेने के लिए महर्षी के पास प्रार्थना की। मुनि ने भी सहर्ष उसे दीक्षा प्रदान की।

अनुक्रम से त्रिविक्रम मुनि सब सिद्धांतों का अध्ययन कर और नव तत्त्व को धारण कर विधिपूर्वक व्रत का पालन करने लगे। एक बार

गुरू से आज्ञा लेकर, सूर्य जैसे एक बादल में से दूसरे बादल में जाता है वैसे ही, एक स्थल से दूसरे स्थल को एकाकी विहार करते हुये, वे एक अटवी में आ पहुँचे। प्रतिमा धारण किए और अनुपम संयम वाले उन महर्षि को पूर्व भव में पक्षी रहे जीव ने, जो वर्तमान में भील बना था, इस अटवी में देखा। देखते ही पूर्वजन्म के वैर के कारण उसे क्रोध उत्पन्न हुआ। इससे वह अल्पबुद्धि वाला अपने भाग्य के अनुसार उस मुनि को लकड़ी और घूंसे आदि से मारने लगा। उसके द्वारा दी गई इस घोर यातना से पीड़ित मुनि, में क्रोधरूपी अग्नि प्रकट हुई। जिससे तुरंत ही घात करने की इच्छा से उन्होंने उस भील पर तेजोलेश्या फेंकी। उसके फलस्वरूप आग में जैसे काष्ठ जलता है वैसे ही वह जंगली भील जल गया। वहाँ से मरकर उसका जीव उसी वन में केसरी सिंह के रूप में अवतरित हुआ। इधर विहार करते-करते त्रिविक्रम मुनि एक बार फिर उसी वन में आ गए। मुनि ने देखा कि पूर्वजन्म के वैर से प्रेरित वह केसरीसिंह तुरन्त ही उनकी ओर मारने दौड़ा। भयंकर क्रोध वाले उस सिंह ने जब उन महात्मा को अत्यधिक त्रास दिया, तब दारूण क्रोध के वश होकर, उन्होंने उस सिंह पर तेजोलेश्या फेंकी। उस लेश्या से केसरी सिंह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ और पुनः उसी वन में बाघ बनकर उत्पन्न हुआ। वे राजर्षि फिर एक बार उस वन में आए और स्थिरतापूर्वक कायोत्सर्ग कर खड़े हो गए। उस स्थान पर वह बाघ आया और पूर्व वैर के चलते उन पर झपटा। अखंड ज्ञान संपत्ति के स्वामी, ऐसे साधु भगवंत भी जब अपने चित्त में अत्यन्त क्रोध प्राप्त करते हैं, तो अन्य सामान्य जीवों की तो बात ही क्या? इस बार भी मुनि के तपरूपी शस्त्र से अर्थात् मुनि द्वारा फेंकी गई तेजोलेश्या से वह बाघ मर कर किसी भयंकर वन में साँड के रूप में अवतरित हुआ। दैवयोग से उसी वन में आकर मुनि ने कायोत्सर्ग किया। उन्हें देखकर पूर्व वैर के कारण साँड ने बहुत उपद्रव करना आरंभ किया। अंत में मुनिराज को जब अपने जीवन के विषय में भी संशय होने लगा तो उन्होंने पूर्व की भांति इस साँड को भी यमराज का अतिथि बना दिया। तत्पश्चात् इस साँड

का जीव मृत्यु के बाद अवंति देश में उज्जयिनी नगरी के निकट रहे सिद्धवट की कोटर में महाविषैला सर्प बना। अनुक्रम से विहार करते-करते त्रिविक्रम मुनि वहाँ आकर उस वट के नीचे कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित हो गए। उस समय मुनि को देखते ही पूर्व वैर के कारण सर्प को उन पर बहुत द्वेष उत्पन्न हुआ। वह दुष्ट हृदय वाला सर्प तत्काल फण उठाकर अपने पूर्व जन्म के अपकारी मुनि को डसने आया। तब उस सर्प पर तेजोलेश्या फेंकी और वह जलकर मर गया। अकाम निर्जरा के योग से कई कर्मो का अन्तकर सर्प का जीव वहाँ से किसी गरीब ब्राह्मण के घर पुत्र रूप में अवतरित हुआ। जिस गाँव में सर्प का जीव ब्राह्मण पुत्र बना था, उसी गाँव में विहार करते-करते, त्रिविक्रम राजर्षि भी आ पहुंचे। गाँव के पास योगाभ्यास में तत्पर रहे मुनि को देख घूमते-घूमते वहाँ आया वह अधम ब्राह्मण मुनि को मारने दौड़ा। मुनि को निर्दयता से मुट्ठियों और लकड़ी से पीटते उस ब्राह्मण को पहले के समान ही क्रोधावेश में उन राजर्षि ने तेजोलेश्या फेंक मार डाला। कुछ शुभ कर्मो के उदय और अकाम निर्जरा से कुछ कर्मो का अन्त हो जाने से उस ब्राह्मण का जीव वाराणसी नगरी में महाबाहु नामक राजा बना। परम ऐश्वर्य की समृद्धिपूर्ण लीलाओं में सदा आसक्त चित्त रहने वाले उस राजा को राज सुख भोगते बहुत समय बीत गया। तब वे राजसुख त्याग संयम धारण करते है। इधर त्रिविक्रममुनि विचरण करते हुए शत्रुंजयगिरि पर पहुंचे। वहाँ भक्तिपूर्वक आदिनाथ प्रभु का स्मरण कर साधना में लीन हो अपने मन को शांत कर पूर्व किये कर्मों का प्रायश्चित्त कर सिद्ध हुए।

३. भरत बाहुबली की कथा

आदिनाथ प्रभु के पुत्र भरत व बाहुबली दोनों ही पराक्रमी व शूरवीर थे। कारणवश दोनों के विचारों में मतभेद आ गया तदुपरान्त युद्ध की स्थिति बन गई। भरत राजा स्नेह तथा कोप के वशीभूत हो कुछ विचार कर आदर सहित अपने मुख्यमंत्री से कहने लगे, 'एक तरफ वह मेरा अनुज

है इस कारण मेरे मन में उसके प्रति कुछ भी अप्रिय करते हुए शंका होती है, और एक तरफ वह मेरी आज्ञा नहीं मानता इस कारण कोप होता है। एक तरफ तो अपने बंधु के साथ युद्ध करने से मन में लज्जा होती है किन्तु दूसरी ओर सब शत्रुओं को जीते बिना यह चक्र शस्त्रागार में प्रवेश नहीं करता, यह विचार मुझे चिंतित करता है; और फिर जिसकी आज्ञा घर में नहीं चले उसकी बाहर कैसे चलेगी? यह अपवाद का हेतु है। साथ ही अनुज बंधु के साथ युद्ध करना, यह भी तो अपवाद का कारण है। इस तरह दोनों ओर अपवाद या लोकनिंदा है।' भरतचक्रवर्ती के ये वचन सुनकर उनके भावों को जानने वाले मंत्री ने अवसर देखकर कहा, 'हे राजन्! आपके लघु बंधु बाहुबलि स्वयं ही आकर अपवाद का संकट दूर करेंगे, क्योंकि बड़े जो-जो आज्ञा करते हैं छोटों को वैसा-वैसा ही करना चाहिए, सामान्य गृहस्थों में ऐसा आचार प्रवर्तित है।' मंत्री के ये वचन सुनकर भरत राजा ने राजनीति के जानकार और वार्ताकुशल, ऐसे सुवेग नाम के दूत को समझा कर बाहुबलि के पास भेजा।

अपने स्वामी की शिक्षा ग्रहण करके, मानो राजा का मूर्तिमान उत्साह हो ऐसा सुवेग दूत वेगवान रथ पर आरूढ होकर वेग से बाहुबलि के देश की ओर चला। श्रेष्ठ सेना साथ लेकर मार्ग में चलते हुए सुवेग ने मार्ग में होते शत्रु समान अपशकुनों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि वैसे पुरुष प्रभु के कार्य में कदापि विलंब नहीं करते। जड पुरुष के चित्त के समान उसका रथ सम मार्ग में भी स्खलित होने लगा, और उसका वाम लोचन वामनता दिखाता हुआ फडकने लगा। ऐसा होते हुए भी, अशुभ शकुनों द्वारा पद-पद पर वारण करने पर भी उस सुवेग ने अनुक्रम से क्षुद्र प्राणियों से व्याप्त अरण्य में प्रवेश किया।

वहाँ उसने गाँव-गाँव में स्थान-स्थान पर सुन्दर गोपियों द्वारा गाए जाते श्री युगादि प्रभु के गुणगान सुने। नगरों और ग्रामों की सीमाओं पर

बाहुबलि के तीन भुवन में सबसे श्रेष्ठ बल का वर्णन होता सुवेग के सुनने में आया। उसने बाहुबलि के अतिरिक्त जगत में किसी राजा को नहीं जानने वाले और लक्ष्मी से कुबेर के समान साथ ही शरीर से महाशोभायमान लोगों को देखा। और जैसे पर्वत के शिखर हों वैसी धान्य की राशि तथा सर्वत्र फल-फूल वाले सुंदर वृक्षों को देखकर उस सुवेग का हृदय चमत्कृत हुआ। वेग से बहुलिदेश के तीन लाख ग्रामों को अनुक्रम से लांघ कर दूत सुवेग बाहुबलि की नगरी तक्षशिला में आ पहुंचा। वहाँ उसे सिंहासन पर बैठे बाहुबलि दिखाई दिए। वहाँ हजारों मुकुटबद्ध तेजस्वी राजा लोग मेरूपर्वत के झूमते शिखरों के समान उनकी उपासना करते थे। किरणों से सूर्य के समान, वह उत्तम श्रृंगार युक्त और मानो मूर्तिमान उत्साह हों ऐसे कुमारों से वीर-व्रत की तरह घिरा हुआ था। रत्नमय दीवार के मणिमय स्तम्भों में प्रतिबिम्ब पडने से, एक शरीर में बल नहीं समाने से मानो मंत्रियों और सेना के समूह से अनेक रूपवाला हो गया हो, वैसा वह बाहुबलि अद्‌भुत दिखाई देता हुआ राजसभा में बैठा था।

ऐसे अपूर्व क्षात्र तेज वाले बाहुबलि को देख कर पहले से ही क्षोभ प्राप्त सुवेग ने आकृति संकोच कर उन्हें प्रणाम किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाकर, उनके मुख की ओर दृष्टि डाली। तब बाहुबलि ने ही इंगित कर उसे आसन बताया और उनके बताए आसन पर सुवेग बैठा। फिर प्रतिध्वनि से सभा की दीवारों को शब्दायमान करते हुए बाहुबलि गंभीर वाणी में सुवेग से बोले, 'हे दूत! मेरे पिता समान पूज्य, ऐसे आर्य भरत सकुशल हैं? हमारी कुल नगरी अयोध्या में सर्वत्र अत्यन्त शांति तो है? पिताश्री द्वारा चिरकाल तक लालन-पालन की हुई समस्त प्रजा तो कुशल से है? आर्य भरत छः खण्ड भरत की विजय करने में अखण्डित तो रहे हैं? चौरासी लाख रथ, हाथी और घोडे दिग्विजय में अबाधित रहे हैं ना? सब राजा निर्विघ्न कुशलतापूर्वक हैं ना? और पृथ्वी पर अन्य किसी

प्रकार की पीडा का प्रकोप तो नहीं है?' इस प्रकार कुशलक्षेम पूछकर बाहुबलि मौन हुए, तब उनकी वाणी से आशंकित हुआ हो वैसे सुवेग कुछ विचार करके बहुबली को प्रणाम करके बोला, 'जिसकी कृपा से अन्यों के घरों में भी कुशलता होती है, वैसे आपके ज्येष्ठ बंधु भरत की कुशलता के विषय में प्रश्न ही कहाँ से आएगा? जिसके शत्रुओं को चक्ररत्न स्वयमेव भेद डालता हो, वैसी विनीता नगरी की प्रजा की कुशलता ही सदा संभावित है। छः खण्ड विजय करने में इन भरतराजा के सामने खडा रह पाने में भी कौन समर्थ था? वैसे ही सुर, असुर और मनुष्य सब जिसकी सेवा करते हैं उनके अश्वों, रथों और हस्तियों को भी कौन कष्ट दे सकता है? कारण कि तीन लोक की विजय करने में समर्थ, ऐसे भरतराजा उनका रक्षण करने को विद्यमान हैं। इस पृथ्वी पर रहे सभी लोगों को, जिनके अधिपति भरतराजा हैं, उन्हें सूर्य के होते हुए कमल के समान ग्लानि होना कैसे संभव है? हे महाराज! वे भरतेश्वर सदा लाखों यक्षों, राक्षसों, विद्याधरों और देवताओं से सेवित हैं, तथापि अपने बंधु बाहुबलि के बिना उन्हें आनंद नहीं है।

'सब देशों में घूमते समय उन्हें किसी भी स्थान पर जब अपने बंधुओं को नहीं देखा तब वे विशेष उत्कंठा से अपने बंधुओं को चाहने लगे। दिग्विजय में और बारह वर्ष तक मनाए राज्याभिषेक महोत्सव में भी नहीं आए अपने बंधुओं से मिलने के लिए वे बहुत लालायित थे। उनमें से अन्य बंधुओं ने तो मन में कुछ विचार कर पूज्य पिताश्री के पास निःसंगता प्राप्त करने हेतु व्रत ग्रहण कर लिया, और वे तो निःस्पृह बनकर अपने शरीर के प्रति भी अपेक्षा रहित हो, आत्मा को जिसमें सुख उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार करने लगे। इस कारण अब केवल आपसे मिलने की उत्कंठा धारण कर भरतेश्वर ने मुझे यहाँ भेजा है। अतः आप शीघ्र ही वहाँ पधारकर अपना समागम सुख अपने बड़े भाई भरतेश्वर को प्रदान करें।

कारण कि बंधु बिना राज्य सुख, दुःख जैसा है और फिर कुलीन पुरुषों को अपने ज्येष्ठ बंधु पिता समान पूज्य होते हैं। अतः उनको नमन करने से आपके मान की सिद्धि उलटे विशेष रूप से होगी। उनकी सेवा करते हुए आपको तनिक भी लज्जा प्राप्त हो ऐसा नहीं है, कारण कि उन भरत चक्रवर्ती के चरणों में देवता भी नमस्कार करते हैं।' ऐसी ही एक घटना उनके बाल्यावस्था की है।

'पूर्व में बाल्यावस्था में अश्वक्रीडा के लिए हम गंगा तट पर गए थे। उस समय मैंने उन्हें आकाश में उछाला था और दया आने से मैंने ही वापस झेल लिया था। वे बंधु अब राज्यमद में वह बात भूल गए होंगे? इसी कारण उन्होंने दुराशा से तुम्हारे जैसा दूत मेरे पास भेजा है। जब मैं युद्ध करने आऊँगा तब मूल्य से खरीदे हुए समस्त सैनिकों का नाश हो जाएगा और केवल भरत को ही मेरे भुजदंड के बल की व्यथा सहन करनी पडेगी। इसलिए, हे दूत! तुम यहाँ से शीघ्र ही चले जाओ। क्योंकि नीति मात्र के पालन की इच्छा करने वाले राजाओं के लिए दूत चाहे जैसा भी हो अवध्य है।'

सुवेग दूत वहाँ से डरा हुआ छुपता-छुपता अपने रथ पर बैठकर जाने लगता है तभी उनके कानों को कुछ सुनाई पड़ता है। किसी ने कहा- 'सभा में से यह नया आदमी भरत राजा का दूत होगा।' तब दूसरे ने पूछा, 'क्या बहुबली के अतिरिक्त पृथ्वी पर कोई अन्य राजा भी है?' तब किसी अन्य ने उत्तर दिया, 'वहाँ, बाहुबलि के ज्येष्ठ बंधु और ऋषभदेव स्वामी के पुत्र भरत नामक राजा हैं।' फिर कोई बोला, 'तब वे इतने समय तक कौन से देश में गए थे?' तो किसी ने कहा, 'वे चक्रवर्ती होने से छः खंड भरत की विजय करने हेतु गए थे।' फिर एक तीसरे ने पूछा, 'उन्होंने बाहुबलि के पास यह दूत किसलिए भेजा होगा?' उत्तर में वहाँ खड़े किसी अन्य व्यक्ति ने कहा, 'अपनी सेवा में आने को कहने के लिए भरत ने यह दूत भेजा होगा!' इस पर कोई अन्य बोला, 'क्या उसके पास मूषक

जैसा कोई मंत्री नहीं होगा जो ऐसा कार्य करते भरत को रोके नहीं।' इस पर पहले वाले ने उत्तर दिया, 'उसके पास सैंकड़ों मंत्री हैं किंतु इस कार्य में भरत को सभी उल्टी सलाह देते हैं। यह सुनकर एक व्यक्ति बोला, 'भाई! यह तो सोए हुए सिंह को दंड के आघात से जगाने जैसा काम कर रहा है। सच ही बुद्धि प्राय: भाग्य का अनुसरण करती है।' इस तरह नगर जनों के मुखों से निकलती वार्तालाप को सुनता सुवेग वेगवान रथ से तक्षशिला नगरी के बाहर तेजी से निकल गया। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा हो जाती है। इस कारण अपने स्वामी के बल के महात्म्य से ही ये सब उत्साह धारण करते हैं। लोकापवाद से भीरु वह दूत हृदय से उन दोनों भाइयों के परस्पर वैरी होने के हेतु की निंदा करने लगा, और यों सोचने लगा, 'अहा! चक्रवर्ती को क्या कमी है कि जो इस बाहुबलि से सेवा की इच्छा करते हैं। मैंने भी केसरीसिंह के समान बाहुबलि को व्यर्थ ही इस प्रकार चिढाया।' इस तरह विचार करता सुवेग वेगवान रथ से कुछ दिनों में सुखपूर्वक अपने स्वामी के देश के निकट आ पहुंचा। उस समय उसने वहाँ के लोगों में होती ये चर्चा सुनी -- 'हे लोगों! सब अपने-अपने स्त्री, पुत्र आदि को लेकर तैयार होकर शीघ्र किले में जाओ, क्योंकि विघ्न आने से पहले सावधान हो जाना अच्छा है। धान अपक्व हो तो भी उसे काट लो और उसे पृथ्वी में गाड कर रखो। कारण कि वैसा करने से अभी सर्वथा नष्ट तो नहीं होगा। अभी तो आत्म रक्षा करना ही कठिन है। क्योंकि बाहुबलि के क्रोधित होने पर किले का बल भी किस काम का है?' -- ऐसी लोकवार्ता सुनकर सुवेग चिन्ता में पड़ गया, क्या यह बात मेरे से भी त्वरित गति से पहले ही यहाँ आ पहुंची कि जिस कारण ये लोग बाहुबलि की सेना से इतने अधिक भयभीत हैं?

दूत ने बाहुबलि के युद्ध करने के निर्णय को विस्तार से बताकर अन्त में कहा, ''आपके साथ वैर की बात सुनकर युद्ध करने के लिए उनके

राज्य प्रदेश में रहने वाला प्रत्येक प्रजाजन विशेष उत्साह से भरा है। सच ही अपने स्वामी की शक्ति से उत्पन्न हुए गुण वैसे ही होते हैं।'' दूत के ये वचन सुनकर भरतराजा ने कहा, मेरा छोटा भाई बाहुबलि शत्रुरूपी तृण में अग्निरूप है, यह मैं जानता हूँ। मैं उसके साथ युद्ध करने योग्य कठोर ऐसा विरोध नहीं करूंगा, क्योंकि सब देशों में घूमने पर भी अपना बंधु किसी स्थान पर नहीं मिलता है। पुरुष को संपत्ति, राज्य और अन्य सब कुछ हर स्थान पर मिल जाता है, किंतु भाग्य के बिना सहोदर कहीं भी नहीं मिलता। जैसे दान बिना धन, नेत्र विहीन मुख और आमात्य विहीन राज्य वृथा है, वैसे ही बंधु विहीन यह समस्त विश्व वृथा है। वह धन निधन (मृत्यु) समान है और जीवन अजीवन है। जिस घर में गोत्र घात से प्राप्त हुई लक्ष्मी विलास करती है, उस लक्ष्मी का पति पतित है और वह राजतेज भी शोभित नहीं होता। 'यह निःसत्व है' इस प्रकार लोग कदाचित मुझ पर हँसें तो अवश्य हँसें, मैं फिर भी अपने इस छोटे भाई बाहुबलि के साथ युद्ध नहीं करूँगा।''

''यद्यपि श्री युगादि प्रभु के पुत्र होने से क्षमा करना आपको शोभता है। और फिर इस प्रकार क्षमा करने से आपका बांधव-स्नेह भी अपूर्व जान पड़ता है। किन्तु चक्रवर्ती पद हेतु दिग्विजय का अधूरा कार्य पूरा करने हेतु युद्ध आवश्यक है'', भरत नरेश्वर को मंत्रियों ने यह सुझाव दिया। सुषेण सेनापति भी विशेष रीति से भरत नरेश्वर को बाहुबलि से युद्ध करने के लिए कहने लगे। इससे भरत नरेश्वर ने युद्ध प्रयाण सूचित करने में सफल, ऐसी भेरी का नाद करवाया।

उसके नाद से सब राजा तत्काल एकत्र हो गए। फिर शुभ दिन को चक्रवर्ती ने स्नान कर, शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र पहन, उत्तम पुष्पों से श्री युगादि प्रभु की भक्तिभाव पूर्वक पूजा की। तत्पश्चात् भरत नरेश ने वांछित अर्थ की सिद्धि के लिए पौषधागार में रहे मुनियों के पास जा कर उनकी

वंदना की। क्योंकि उनके धर्मलाभ रूपी आशीष अधिक सिद्धि प्रदान करने वाले हैं। उसके बाद श्रेष्ठ वेषधारी, आनंदी और पुरुषार्थ मात्र के आभूषण वाले चक्रवर्ती ने नगर के बाहर सीमान्त भाग में छावनी बनाई। जैसे लोहमय पदार्थ चुंबक से खिंच कर उसके निकट आता है वैसे उस अवसर पर भेरी के नाद से खिंचकर सब देशों और गाँवों के अधिपति आ-आकर वहाँ अयोध्या में भरतेश्वर की सेवा में उपस्थित हो गए। फिर प्रयाण हेतु पतिपुत्रवन्त रमणियों ने और कुलीन कन्याओं ने मांगलिक के लिए अखंड-अक्षतों से आदरपूर्वक बधाई दी। भाट, चारण, बंदीजन आदि उस अवसर पर स्तुति करने लगे और देवता सेवा करने लगे। कुलवधुएं मंगल गीत गाने लगीं और महाजन लोग उनके दर्शन करने लगे। इस प्रकार मांगलिकों से कृतार्थ हुए भरतराजा रण यात्रा का आरंभ करने के लिए, प्रातःकाल में सूर्य जैसे पूर्वांचल पर चढता है, उसी प्रकार प्रातःकाल में ही सुरगिरि नामके गजेन्द्र पर चढे। यह गजरत्न बहुत ऊँचा था। वह चक्रवर्ती के यश के जैसा उज्ज्वल था।

अमार्ग में मार्ग बनाते, भरतेश्वर नित्य योजन-योजन प्रयाण करते कई दिनों में बहुलि देश के निकट आ पहुँचे। भरतराजा ने अपनी सेना के लिए आवास व्यवस्था हेतु कुछ पुरुषों को आगे भेजा था, उस समय उन्होंने भरत के पास लौटकर हर्ष से विज्ञप्ति की, स्वामी! आप जय प्राप्त करें। यहाँ से उत्तर दिशा में गंगा नदी के किनारे वृक्षों की शाखाओं से सूर्य को ढंकने वाला एक विशाल वन है, और उस वन में सुवर्ण तथा मणि-रत्नमय और मनोहारी, ऐसा पूज्य पिता श्री ऋषभदेव भगवंत का एक सुंदर प्रासाद है। उस प्रासाद में उत्तम बुद्धि वाले कोई संयमी, त्यागी, और विद्वानों के समूह मे अलंकार रूप मुनिराज हृदय में ध्यान धरते हुए विराजमान हुए हैं। उन सेवकों के ये वचन सुनकर, सुकृत में सर्व प्रथम आदर करने वाले भरतराजा तुरंत श्री आदीश्वर प्रभु को वंदना करने हेतु उस वन में गए और विधिवत जिनेश्वर को नमन

कर तथा भक्तिपूर्वक प्रभु का पूजन कर वे वहाँ रत्नमय वेदिका पर बैठे। वहाँ बैठकर इधर-उधर देखते हुए भरतेश्वर ने ध्यानस्थित, प्रशांत और तपस्वी, ऐसे एक मुनि को देखा। तब उन्हें प्रणाम करके और उन्हें पहचान कर विनोदपूर्ण सुंदर वाणी में भरतराजा ने उन महात्मा से कहा, 'हे भगवन्! आप विद्याधर थे और मेरे साथ युद्ध करने को उत्सुक होकर नमि-विनमि के साथ आए थे; क्या यह आपको याद आता है? फिर भी अब सब प्राणियों पर आपकी ऐसी करूणापूर्ण वृत्ति हो गई है; तो ऐसे वैराग्य का आपके निकट क्या कारण बना है? वह कृपाकर आप मुझे फरमावें।' उस समय अपने वैराग्य का हेतु जानने की इच्छा वाले भरत नरेश्वर से मुनि ने कहा, 'जब मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया था उस समय नमि-विनमि और मैं तुम्हारे द्वारा जीत लिए गए थे। उसी से वैराग्य प्राप्त कर तत्काल ही अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर मैंने प्रभु के पास जाकर चारित्र ग्रहण किया। तब से आज दिन तक श्री युगादि प्रभु की मैं नित्य सेवा करता हूँ। दोनों लोक में साम्राज्य प्रदाता इन देवाधिदेव की सेवा कौन नहीं करेगा?' विद्याधर मुनिवर ने इस प्रकार कहा तब भरत चक्रवर्ती ने उनसे पूछा, 'भगवान्! इस समय पिता श्री ऋषभदेव भगवंत कहाँ विराजते हैं?'

इधर बहुलि देश के अधिपति बाहुबलि ने भरत के आने की सूचना पाकर अपने सिंहनाद के साथ भेरी का नाद करवाया। दूसरी ओर भरत नरेश ने सुषेण को अपनी सेना का सेनापति बनाया। इसके बाद सेना में दूत भेजकर सभी राजाओं को और सूर्ययशा आदि अपने सवा करोड़ पुत्रों को बुलवाया। एक-एक का नाम लेकर बहुमानपूर्वक बुलाकर जैसे वैमानिक देवों को इंद्र शिक्षा देता है वैसे उन्हें शिक्षा देना आरंभ किया। इतने में तो मानो ऋषभदेव स्वामी के दो पुत्रों का परस्पर युद्ध देखने का इच्छुक हो वैसे सूर्य शीघ्रता से उदयाचल की चोटी पर आया।

बाहुबलि स्नान-विलेपन करके, शुभ्र वस्त्र धारण करके श्री जिनेश्वर देव की पूजा करने गए। श्री आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा का जल से अभिषेक करके विविध अक्षत तथा पुष्पों से उन्होंने उस प्रतिमा की पूजा करके उसकी स्तुति की। तदनन्तर उस देव मंदिर में से बाहर निकल बाहुबलि ने वज्रमय बख्तर और शिरस्त्राण धारण किए, इससे वे उत्साह से दुगने हुए हों ऐसे दिखने लगे।

भरत नरेश्वर भी प्रात:काल स्नान कर, धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनकर देवालय में गए। संपूर्ण भक्तिवाले भरतराजा ने धूप जलाकर प्रभु की स्तुति की। फिर चैत्य में से निकलकर वज्र से भी अभेद्य, ऐसा जगज्जय नामक कवच और उत्तम श्रृंगाररूपी शिरस्त्राण धारण किया तथा लोहमय बाणों से भरे पूर्णजय और पराजय नामके दो अक्षय तरकश पीठ पर धारण किए।

युद्ध का प्रारम्भ हुआ। एक दूसरे पर शस्त्र का प्रयोग किया गया। जाज्वल्यमान चक्र बाहुबलि के निकट आया और उनकी प्रदक्षिणा करके वापिस चक्रवर्ती के हाथ में लौट गया, क्योंकि चक्रवर्ती का चक्र उनके समान गोत्रीय कुटुम्बी पर प्रभावी नहीं होता, तब फिर तद्भवसिद्धि प्राप्त करने वाले बाहुबलि जैसे महापुरुष पर तो कैसे प्रभावी हो सकता है। इस घटना से बाहुबलि ने अत्यन्त क्रोधित होकर सोचा, इस चक्र को, इसके एक हजार यक्षों को और यह अन्याय करने वाले इसके अधिपति भरत को अब तो एक मुष्टि के प्रहार से चूर-चूर कर डालूं! यह सोचकर कल्पांत काल में छोड़े गए इंद्र के वज्र जैसी क्रूर मुष्टि उठाकर बाहुबलि अपने भाई भरत की ओर दौड़े। परन्तु समुद्र जैसे मर्यादा भूमि में आकर अटक जाता है, वैसे ही बाहुबलि अपने बड़े भाई चक्रवर्ती भरत नरेश्वर के पास आकर अटक गए। गुरूजन को मारकर और लघुजन को छल से पृथक कर यदि महान राज्य सुख मिले, ऐसा हो तो भी मुझे उसे ग्रहण नहीं ही करना है।

ऊपर के दिखावे मात्र से सुख प्रदान करने वाले इस पौद्गलिक पदार्थों के मोह से भ्रमित हुए अधम पुरुष नरकागार के कारणों में ही सदा प्रवर्तते है। यदि वैसा नहीं होता तो वैसे राज्य को पिताश्री ऋषभदेव भगवंत क्यों छोड़ते? इसलिए मैं भी आज उन पूज्य पिता के मार्ग का ही पथिक बनूं।' इस प्रकार मन में विचार कर वे महाविवेकी बाहुबलि पश्चाताप से अपने नेत्रों में से निकलते किंचित ऊष्ण अश्रुरूपी जल से पृथ्वी का सिंचन करते हुए अपने बड़े भाई भरत नरेश्वर से कहने लगे, "हे ज्येष्ठ बंधु भरत! मैंने आपको राज्य के लिए बहुत खेद कराया है, तो अब आप मेरे उस दुश्चरित्र के लिए मुझे क्षमा करें। मैं पिताश्री के मार्ग का पथिक बनूँगा। मुझे अब राज्य संपत्ति की स्पृहा नहीं है।" ऐसे कहकर उसी उठी मुष्ठि से उन्होंने अपने केशों का लोचन किया।

इस प्रकार कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े हुए बाहुबलि को देखकर तथा अपने अघटित कार्यों से लज्जित हुए भरत चक्रवर्ती मानो पृथ्वी में धंस जाने की इच्छा करते हों, वैसे नीचा मुख किए बाहुबलि के सम्मुख खड़े रहे, और उनके नेत्रों में से आँसुओं का प्रवाह बहने लगा। अपने लघु बंधु को उन्होंने प्रणाम किया। 'लोभ और मत्सर से ग्रस्त हुए हैं, उनमें मैं मुख्य हूँ! और तुम दयालु और धर्मात्माओं में मुख्य हो! हे भ्राता! तुमने प्रथम तो मुझे युद्ध में जीत लिया और फिर व्रतरूपी शस्त्र से इन रागादि भाव-शत्रुओं को भी जीत लिया। इससे इस जगत में तुम से अधिक कोई बलवान वीर नहीं है।'

'हे भगवान्! सचमुच इस संसार में आप ही एक मात्र वीतराग हैं, अन्य कोई नहीं कि जो पुत्र पर भी लेशमात्र भी रागवान नहीं हुए, उस पर भी लेशमात्र भी ममता नहीं रखी।'

मार्ग में कायोत्सर्ग मुद्रा में रहे बाहुबलि के चरणों में प्रणाम कर भरत नरेश्वर विराट उत्सव से शोभित अयोध्यापुरी में आए। वहाँ सुर, असुर

और मनुष्यों के समूह द्वारा सेवित भरत राजा सुखकारी पिता के समान प्रजा का पालन करने लगे।

बाहुबलि राजर्षि बनकर, सर्व सावद्य कर्मों से रहित और सर्व प्राणियों के हितकारी बनकर, कर्मों को खपाने के लिए कायोत्सर्ग ध्यान में लीन थे। वहाँ निश्चल अंग वाले उन मुनिचन्द्र बाहुबलि को देखकर देवता लोग तर्क करते थे कि 'क्या यह ध्यानाधिरूढ रत्नमूर्ति होगी या पृथ्वी में से काटी हुई प्रतिमा होगी? अथवा आकाश में से अवतरित हुए कोई देवता होंगे।' राग और द्वेष को जीतने वाले और सब पर समान भाव रखने वाले इन मुनिपति ने हृदय कमल में श्री जिनेश्वर भगवान् का ध्यान धर कर, मत्सर बुद्धि का त्याग कर, एक वर्ष तक कायोत्सर्ग में रहकर, अपने घाती कर्मों को दग्ध प्रायःकर दिया था। अहंकार का भाव स्वतः ही समाप्त हो गया। 'जो पुरुष गजेन्द्र पर चढ़े हों उन्हें कैसे ज्ञान प्राप्त होगा? अतः अपने वैरी के समान उस गजेन्द्र का तुम त्याग करो।'

'मेरे से संयम में बड़े उन अपने छोटे बंधुओं को नमस्कार करता हूँ। मान धरने से पुण्य, कीर्ति, यश, लक्ष्मी, स्वर्ण और अद्‌भुत साम्राज्य, सभी सर्वनाश पाते हैं और दुर्गति को प्राप्त होते हैं।' तत्पश्चात् देवी द्वारा व्रती का वेष प्राप्त कर उत्तम ज्ञान से शुद्धत्व के ज्ञाता, वे बाहुबलि राजर्षि प्रभु के पास जाकर, प्रभु की प्रदक्षिणा करके, केवलज्ञानियों की पार्षदा में बैठ गए।

इस प्रकार बलवानों में भी बलवान ऐसे बाहुबलि राजर्षि ने एक साथ भरत चक्रवर्ती पर और कर्मों के समूह पर विजय प्राप्त कर, अंत में अपने मान को भी जीत लिया।

शत्रुंजय गिरि पर धर्मकार्य का महाफल

इस तीर्थ में श्री अरिहंत प्रभु की पुष्प और अक्षतादिक से पूजा और स्तुति की हो, तो उस पूजक प्राणी के सर्व भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। अन्य तीर्थ में की हुई प्रभु की पूजा की तुलना में यहाँ की हुई श्री जिनेश्वरदेव की पूजा अनंत गुणी (फलदायी) होती है। यहाँ एक पुष्प मात्र से भी जिनपूजन किया हो, तो उससे स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ नहीं रहते। जो पुरुष इस तीर्थ में श्री जिनेश्वर देव की अष्टप्रकारी पूजा करते हैं, वे इस लोक में नवनिधान को प्राप्त करके, अन्त में वे पूजक श्री अरिहंत के समान हो जाते हैं। श्री अरिहंतदेव की पूजा, गुरुकी भक्ति, श्री शत्रुंजय महातीर्थ की सेवा और चतुर्विध संघ का समागम, इन चार वस्तुओं की साधना करने से भाग्यवान पुरुष सुकृत का सहभागी गिना जाता है। मन, वचन, काया से इस तीर्थ में जो गुरु की आराधना की हो, तो वह तीर्थंकर के पद की प्राप्ति का कारण बनती है। इस तीर्थ में जो सामान्य मुनियों की आराधना की हो तो भी उससे चक्रवर्ती की लक्ष्मी प्राप्त होती है। जो लोग यहाँ आकर अपने द्रव्य से गुरु की पूजा, भक्ति नहीं करते, उनका जन्म और सर्व संपत्ति निष्फल है। श्री तीर्थंकरों के लिए भी पूर्वभव में बोधिबीज के हेतुभूत गुरु महाराज हैं, इस कारण बुद्धिमान पुरुष के लिए गुरु महाराज विशेष रूप से पूजनीय हैं। इस महातीर्थ में धर्म संबंधी सर्व क्रिया गुरु के साथ करनी चाहिए; कारण कि, गुरु के बिना सब क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। इसलिए ऋणमुक्त होने की इच्छा वाले पुरुषों को इस पवित्र तीर्थ में धर्मदायक गुरु महाराज की वस्त्र, अन्न, पेय आदि के

दान से विशेष प्रकार की सेवा-भक्ति करनी चाहिए। इस गिरिराज पर गुरु को वस्त्र, अन्न और जल का दान करने से और भावपूर्वक भक्ति करने से इस लोक और परलोक में सर्व संपत्तियां प्राप्त होती हैं। शत्रुंजय गिरिराज और श्री जिनप्रतिमा, ये स्थावर तीर्थ कहलाते हैं; और सुविहित निर्ग्रन्थ गुरु महाराज, ये जंगम तीर्थ हैं; अतः इस तीर्थ पर वे भी अतिशय पूज्य है। अभय-दान, अनुकंपादान, पात्रदान, उचितदान और कीर्तिदान, तथा अन्नदान, ज्ञानदान, औषध-दान और जलदान – ये सभी दान इस महातीर्थ में विशेष रूप से फलदायक हैं, ऐसा बुद्धिमान पुरुषों को जानना चाहिए। जो लोग इस महातीर्थ में दीन और अनाथ आदि को अबाधित भोजन देते हैं, उनके घर निरंतर अबाधित लक्ष्मी नाचती है। इस तीर्थ में महाबुद्धिशाली पुरुषों को महासिद्धि का निदान, ऐसा दान देना चाहिए; क्योंकि दान दिये बिना प्राणी भव-सागर को पार नहीं कर पाते। अपनी खुशी से अपने आत्मा का घात करने वाला जो पुरुष इस तीर्थ पर आकर शील का भंग करता है, उसकी किसी भी स्थान पर शुद्धि नहीं होती और वह चांडाल से भी अधम होता है। इस स्थान पर किया हुआ तप निकाचित कर्मों का लोप करता है। इस तीर्थ में यदि किसीने एक दिन का तप किया हो, तो वह भी समग्र जन्म में किए पापों का नाश करता है। और छठ्ठ, अठ्ठम आदि तप करने से इस तीर्थ में उत्तम फल मिलते हैं। इसलिए सर्व वांछित प्रदान करने वाले तप इस तीर्थ में विशेष रूप से करने चाहिए। जो इस तीर्थ में अष्टान्हिका (अट्ठाई) तप करे तो वह प्राणी कर्मरहित होकर, इच्छा नहीं करे तो भी, स्वर्ग और मोक्ष का सुख प्राप्त करता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला पुरुष इस तीर्थ में चैत्री पूनम का एक उपवास करे तो, और वस्त्र की चोरी करने वाला शुद्ध भावना से यदि सात आयंबिल करे तो, उनकी इस तीर्थ में शुद्धि हो जाती है। रत्न की चोरी करने वाले, इस तीर्थ में अच्छी भावनापूर्वक दान कर कार्तिक मास में सात दिन के तप से स्पष्ट रीति से शुद्ध हो जाते हैं। चाँदी, कांसा, तांबा, लोहा और पीतल चोरी

करने वाला पुरुष यहाँ सात दिवस पुरिमुड्ढ का तप करने से उस पाप से मुक्त हो जाता है । मोती और मूंगे की चोरी करने वाला यहाँ त्रिकाल जिनपूजा करे और पंद्रह दिन तक आयंबिल करके निःस्नेह (चिकनाई रहित) भोजन करे तो वह पापमुक्त हो जाता है । धान्य का चोर और जल का चोर पात्रदान से शुद्ध होता है । रस पदार्थ की चोरी करने वाला यहाँ याचकों को याचना प्रमाण महादान देने से उस पाप से मुक्त होता है । वस्त्राभरण को हरने वाला इस तीर्थ में शुद्ध भावना से जिनपूजन करके अपने आत्मा का खड्डे जैसे संसार में से उद्धार करता है । गुरुद्रव्य और देवद्रव्य की चोरी करने वाला इस महातीर्थ की निश्रा में सद्ध्यान तथा पात्रदान में परायण होकर श्री जिनेश्वर देव की पूजन करे तो वह अपने पाप को निष्फल करता है । कुमारिका, दीक्षिता, पतिता (वेश्या), सधवा, विधवा, गुरुपत्नी और अगम्या स्त्री का संग करने वाला, इस तीर्थ पर जो छ मास पर्यंत अहर्निश जिनभगवंत के ध्यान में मन को स्थिर करके छः मास का तप करे, तो वह पुरुष अथवा स्त्री तत्काल उस पाप से मुक्त हो जाता है । गाय, महिषी (भैंस), हाथी, पृथ्वी और मंदिर चोरी करने वाला, इस तीर्थ में भक्ति से श्री जिनेश्वर भगवंत का ध्यान धरे और उन-उन वस्तुओं का यदि वह इस तीर्थ में दान करे तो वह पापमुक्त बन जाता है। अन्य के चैत्य, गृह, आराम, पुस्तक और प्रतिमा आदि में अपना नाम डाल कर, 'यह मेरा है' ऐसा जो दुष्ट पुरुष कहे, वह पुरुष इस पुण्यसत्र तीर्थक्षेत्र में शुभ आशयवाला होकर छः मास की सामायिक से पवित्र तप द्वारा उस पापों के समूह से शुद्ध हो जाता है; परमेष्ठी भगवंत का इस स्थान पर ध्यान, देवार्चन और दयादिक गुणों से युक्त, ऐसा समदृष्टि श्रावक इस तीर्थभूमि में सर्व पापों से मुक्त हो जाता है । वैसा कोई पाप नहीं कि जो यहाँ अर्हंत का ध्यान करने से नहीं जाए ।

चैत्रीपूर्णिमा की महिमा

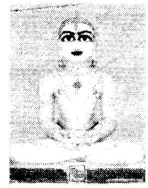

इस अवसर्पिणी में जैसे श्री ऋषभदेवस्वामी प्रथम तीर्थंकर हुए, वैसे ही पुंडरीक स्वामी आदि के निर्वाण से, उसके बाद यह तीर्थ प्रसिद्ध हुआ। जहाँ मात्र एक मुनि सिद्ध हो, वह भी तीर्थ कहलाता है; तो श्री शत्रुंजयगिरि पर तो इतने सारे मुनिवर सिद्ध हुए, इसिलए यह तीर्थोत्तम-तीर्थ कहलाता है। भगवान ऋषभदेवस्वामी फाल्गुन मास की शुक्लाष्टमी के महापवित्र दिन शत्रुंजयगिरिराज पर पधारे थे, इस कारण जगत में यह फागण सुदि आठम का दिन महापर्व के रूप में प्रसिद्ध हुआ । इसी प्रकार प्राणियों के आगामी भव के शुभ-अशुभ आयुष्य के बंध करने का कारण होने से यह अष्टमी और चैत्रीपूर्णिमा दोनों इस तीर्थभूमि पर पर्व के रूप में प्रख्यात हुए । इन दोनों पर्वों के अवसर पर इस तीर्थ में भक्ति से यदि अल्प दान भी दिया हो तो वह सारे क्षेत्र में बोये हुए बीजों की तरह प्रचुर फल प्रदान करता है । यदि अष्टमीपर्व पर दान, शील और आराधना हो तो वह, इस तीर्थ पर जिनभक्ति के समान, उन प्राणियों के अष्टकर्मों को भेद डालता है ।

चैत्रीपूर्णिमा के दिन पाँच करोड मुनियों के साथ पुंडरीकमुनि सिद्ध हुए, इससे जगत में तब से चैत्रीपूर्णिमा का पर्व प्रसिद्ध हुआ, और यह तीर्थ भी पुंडरीक गिरिराज के नाम से प्रख्यात हुआ । इस चैत्रीपूर्णिमा के पवित्र दिन जो संघसहित यात्रा करके पुंडरीकगिरि पर रहे पुंडरीक गणधर की पूजा करे, वह लोकोत्तर स्थिति प्राप्त करता है । नंदीश्वरादि द्वीपों में रहे शाश्वत प्रभुओं के पूजन से जितना पुण्य होता है, उससे अधिक पुण्य शत्रुंजय गिरिराज पर चैत्रीपूर्णिमा पर पूजन करने से होता है । चारित्र,

चन्द्रप्रभ प्रभु, चैत्रीपूर्णिमा, शत्रुंजयगिरि, और शत्रुंजया नदी — ये पाँच वस्तुएं पुण्य के बिना कभी भी प्राप्त नहीं होतीं । जो भव्य आत्मा चैत्रीपूर्णिमा के दिन जिनालय में शांतिक कर्म या ध्वजारोपण करता है, और आरती उतारता है, वह उत्तरोत्तर कर्मरज रहित संसारस्थिति को प्राप्त करता है । चैत्रीपूर्णिमा को कदाचित् अन्य स्थान पर रह कर भी जो संघपूजा करता है वह भी स्वर्ग के सुख प्राप्त करता है, तो विमलाचल तीर्थ पर करने में आवे उसके फल का क्या कहना? चैत्रीपूर्णिमा को वस्त्र तथा अन्नपान आदि से जो मुनि की भक्ति की हो तो उसके योग से आत्मा चक्रवर्त्ती और इन्द्र का पद पाकर, अनुक्रम से मोक्ष पाता है । सब पुण्यों को बढाने वाला चैत्रीपूर्णिमा का पर्व सब पर्वों में उत्तम और श्रेष्ठ है । देवता भी नंदीश्वर द्वीप में इस दिन गिरि पर जाकर भक्ति से जिनपूजादि से इस पर्व की आराधना करते हैं; इसलिए धर्मबुद्धि वाले भव्य प्राणी को भी चैत्रीपूर्णिमा के मंगलकारी दिन प्रमाद के हेतुरूप विकथा, कलह, क्रीडा और अनर्थदंड आदि कोई भी पापाचरण नहीं करना चाहिए, मात्र धर्मकार्य में ही गति करनी चाहिए । वैसे ही चैत्रीपर्व के दिन अक्षयसिद्धि के लिए जैनशासन की प्रभावना और जिनचैत्य की, सिद्धांत की, तथा सुपात्र गुरुमहाराज की भक्ति करनी चाहिए।

निन्नाणवे यात्रा (छट्ठ अट्ठम) की विधि

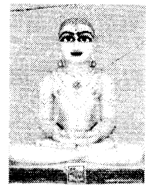

वर्तमान चोबीशी के आद्य तीर्थंकर आदीश्वर भगवान यानि ऋषभदेव हुए हैं, वे अपने आयुष्य के शेष रहे हुए एक लाख पूर्व वर्ष में ९९ पूर्व बार इस तीर्थ राज पर आकर के समवसरे थे। इस कारण से ९९ यात्रा की महिमा हुई है और इसके अनुकरण के रूप में ९९ यात्रा की जाती है। उसकी विधि निम्नलिखित है।

(१) नवाणु (निन्नाणवे) यात्रा करने वाले को नित्य-नित्य पांच चैत्यवन्दन करने चाहिये:-

(१) श्री गिरिराज के सम्मुख तलहटी पर।

(२) श्री शान्तिनाथ भगवान के जिनालय में।

(३) श्री रायण पादुका के सामने।

(४) श्री पुण्डरिक स्वामी के मन्दिर में।

(५) मूलनायक श्री आदीश्वर भगवान के जिनालय में तथा इन पाँचों स्थानों पर एक-एक बार स्नात्र पूजा पढ़ानी चाहिए।

(२) एक-एक यात्रा के अनुसार प्रतिदिन दस बंधी (पक्की) माला गिननी चाहिए, ताकि 'नवाणु' (निन्नाणवे) पूर्ण होने पर एक लाख नवकार मंत्र पूर्ण हो जायें।

(३) निन्नाणवे यात्रा करने वाले को नित्य दोनों समय प्रतिक्रमण करना चाहिये, सचित्त वस्तु का त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन, शक्ति

हो तो एकासना करना चाहिये, शयन भूमि पर करना चाहिये और पैदल चलकर यात्रा करनी चाहिये।

(४) गिरिराज की निन्नाणवे यात्रा करनी, तदुपरान्त घेटी पाग की नौ मिला कर कुल १०८ यात्रा करनी। नवाणुं यात्रा करने वाले को ९ प्रदक्षिणा, ९ खमासमणा, ९ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिए।

(५) यथाशक्ति रथयात्रा की शोभायात्रा निकालनी चाहिये, निन्नाणवे प्रकारी पूजा पढ़ानी तथा भगवान की आंगी रचानी चाहिये।

(६) नित्य तीन प्रदक्षिणा देनी तथा एक बार आदीश्वर दादा के मन्दिर की १०८ प्रदक्षिणा देनी चाहिये।

(७) नित्य नौ स्वस्तिक करें, नौ फल तथा नौ नैवेद्य रखें।

(८) 'श्री शत्रुंजय महातीर्थ आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं' कहकर नित्य नौ लोगस्स का कायोत्सर्ग करना चाहिये।

(९) नित्य यथाशक्ति अष्ट प्रकारी पूजा करें।

(१०) एक बार १०८ लोगस्स का कायोत्सर्ग करें।

(११) शक्ति हो तो एक बार चौविहार छट्ठ करके सात यात्रा करें।

(१२) घेटी पाग, (१३) रोहित शाला पाग तथा (१४) शत्रुंजय नदी की पाग से एक बार तो अवश्य यात्रा करें।

(१५) बारह कोस, छः कोस एवं डेढ़ कोस की प्रदक्षिणा करें, इस प्रकार कुल मिलाकर १०८ यात्रा करें।

(१६) नौ बार नौ टूंकों के दर्शन करें तथा नौ टूंकों में प्रत्येक टूंक के मूलनायकजी के समक्ष चैत्यवन्दन करें।

(१७) एक बार गिरिराज की पूजा (गिरिपूजन) अर्थात् पुरानी तलहटी से जाकर श्री कल्याण विमल देहरी, श्री मेघमुनि के स्तुप की देहरी, श्री गोडी पार्श्वनाथ की देहरी तथा उसके बाद जय तलहटी से लगाकर रामपोल तक जो-जो चरण पादुकाएँ अथवा प्रतिमाजी हैं, उनकी पूजा करें, ताकि यदि कोई आशातना हुई हो, तो उसका निवारण हो जाये।

(१८) नित्य नौ खमासमणा निम्नलिखित दोहे बोलकर दें:-

नौ खमासमणा

सिद्धाचल समरुं सदा, सोरठ देश मोझार।
मनुष्य जन्म पामी करी, वन्दुं वार हजार।।१।।

सोरठ देश मां संचर्यो, न चढ्यो गढ़ गिरनार।
शेत्रुंजी नदी नाह्यो नहीं, एनो एले गयो अवतार।।२।।

शेत्रुंजी नदी मां नाही ने, मुख बांधी मुख कोश।
देव युगादि पूजिये, आणी मन सन्तोष।।३।।

एकेकुं डगलुं भरे, शेत्रुंजा सामुं जेह।
ऋषभ कहे भव क्रोड़नां, कर्म खपावे तेह।।४।।

शेत्रुंजा समो तीरथ नहि, ऋषभ समो नहीं देव।
गौतम सरीखा गुरु नहीं, वली-वली वंदु तेह।।५।।

जग मां तीरथ दोय वडा, शेत्रुंजय, गिरनार।
एक गढ़ ऋषभ समोसर्या, एक गढ़ नेम कुमार।।६।।

सिद्धाचल सिद्धि वर्या, मुनिवर कोडी अनंत।
आगे अनंता सिद्धशे, पूजो भवि भगवंत।।७।।

शत्रुंजय गिरि मंडणो, मरुदेवानो नन्द।
युगला धर्म निवारणो, नमो युगादि जिणंद।।८।।

तन, मन, धन, सुत, वल्लभा, स्वर्गादि सुख भोग।
वली वली ए गिरि वंदता, शिवरमणी संयोग।।९।।

श्री शत्रुंजय तप की आराधना विधि

(१) इस तप के प्रारंभ में १ अट्ठम, पारणा में बियासणा, उसके बाद में एकांतरे छट्ठ और अंत में १ अट्ठम करना।

(२) दोनों समय प्रतिक्रमण

(३) तीन बार देववंदन

(४) खमासमणा, स्वस्तिक, काउस्सग्ग वगेरे २१-२१ करना।

(५) तप के दिन श्री शत्रुंजय लघु कल्प का वांचन या श्रवण करना।

(६) तप के दिन निम्नोक्त २०-२० माला गिननी।

अट्ठम	-	१ला श्री पुंडरिक गणधराय नमः
छट्ठ	-	१ला श्री ऋषभदेव सर्वज्ञाय नमः
छट्ठ	-	१रा श्री विमल गणधराय नमः
छट्ठ	-	३रा श्री सिद्धक्षेत्राय नमः
छट्ठ	-	४था श्री हरिगणधराय नमः
छट्ठ	-	५वाँ श्री बाबुबली नाथाय नमः
छट्ठ	-	६ट्ठा श्री सहस्रादि गणधराय नमः
छट्ठ	-	७वाँ श्री सहस्र कमलाय नमः
छट्ठ	-	२रा श्री कोडी गणधराय नमः

(७) श्री शत्रुंजय तप में तप के दिन निम्नोक्त २१ खमासमणे देना-

(१) श्री शत्रुंजय पर्वताय नमः

(२) श्री पुंडरिक पर्वताय नमः

(३) श्री सिद्धक्षेत्र पर्वताय नमः

(४) श्री विमलाचलाय नमः

(५) श्री सुरगिरये नमः

(६) श्री महागिरये नमः

(७) श्री पुण्यराशये नमः

(८) श्री पर्वता नमः

(९) श्री पर्वतेंद्राय नमः

(१०) श्री महातीर्थाय नमः

(११) श्री सारस्वताय नमः

(१२) श्री दृढ़शक्ति पर्वताय नमः

(१३) श्री मुक्तिनिलयाय नमः

(१४) श्री पुष्पदंताय नमः

(१५) श्री महापद्माय नमः

(१६) श्री पृथ्वीपीठाय नमः

(१७) श्री सुभद्रगिरि पर्वताय नमः

(१८) श्री कैलाशगिरि पर्वताय नमः

(१९) श्री पातालमूलाय नमः

(२०) श्री अकर्मकाय नमः

(२१) श्री सर्वकामपूरणाय नमः

जिनको विस्तार से २१ खमासमणे देने हों, वे निम्नलिखित दोहे बोलकर दे एवं कार्तिक पूनम के दिन निम्नलिखित खमासमणें दें।

सिद्धाचल के २१ खमासमणा

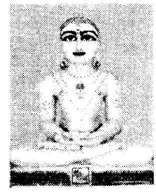

कार्त्तिक पूर्णिमा के सिद्धाचलजी के २१ खमासमणा

सिद्धाचल समरुं सदा, सोरठ देश मोझार।
मनुष्य जन्म पामी करी, वंदूं वार हजार।।

अंग वसन मन भूमिका, पूजोपगरण सार।
न्याय, द्रव्य, विधि, शुद्धता, शुद्धि सात प्रकार।।

कार्तिक सुदी पूनम दिने, दस कोटि परिवार।
द्राविड, वारिखिल्लजी, सिद्ध थया निरधार।।

तिण कारण कार्तिक दिने, संघ सयल परिवार।
आदि जिन सन्मुख रही, खमासमण बहु वार।।

एकवीर नामे वर्णव्यो, तिहां पहलुं अभिधान।
शत्रुंजय शुकराज थी, जनक वचन बहुमान।। सिद्धा.१ ।।

समोसर्या सिद्धाचले, पुण्डरिक गणधार।
लाख सवा महातम कह्युं, सुर, नर सभा मोझार।।

चैत्री पूनम ने दिने, करी अणसण एक मास।
पाँच कोडी मुनि साथ शुं, मुक्तिनिलय मां वास।।

तिणे कारण पुण्डरिक गिरि, नाम थयुं विख्यात।
मन-वच-काये वंदिये, उठी नित्य प्रभात।। सिद्धा.२ ।।

वीस कोडीशुं पाण्डवा, मोक्ष गया इणे ठाम।
एक अनंत मुगते गया, सिद्धक्षेत्र तिणे नाम।। सिद्धा.३।।

अडसठ तीरथ न्हावतां, अंतरंग घड़ी एक।
तुम्बी जल स्नाने करी, जाग्यो चित्त विवेक।।

चंद्रशेखर राजा प्रमुख, कर्म कठिन मल धाम।
अचल पदे विमला थया, तिणे विमलाचल नाम।। सिद्धा.४।।

पर्वत मां सुरगिरि वडो, जिन अभिषेक कराय।
सिद्ध हुआ स्नातक पदे, सुरगिरि नाम धराय।।

अथवा चौदे क्षेत्र मां, ए समो तीरथ न एक।
तिणे 'सुरगिरि' नामे नमुं, जिहां सुरवास अनेक।। सिद्धा.५।।

ऐंशी योजन पृथुल छे, ऊँच पणे छव्वीस।
महिमाए मोटो गिरि, महागिरि नाम नमीश।। सिद्धा.६।।

गणधर गुणवंता मुनि, विश्व मांहे वंदनीक।
जेहवो तेहवो संयमी, ए तीर्थे पूजनीक।।

विप्र लोक विषधर समा, दुःखिया भूतल मान।
द्रव्य लिंगी कण क्षेत्र सम, मुनिवर छीप समान।।

श्रावक मेघ समा कह्या, करता पुण्यनुं काम।
पुण्य नी राशि वधे घणी, तिणे पुण्यराशि नाम।। सिद्धा.७।।

संयमधर मुनिवर घणा, तप तपता एक ध्यान।
कर्म-वियोगे पामिया, केवल लक्ष्मी निधान।।

लाख एकाणुं शिव वर्या, नारद शुं अणगार।
नाम नमो तिणे आठमुं, श्रीपदगिरि निरधार।। सिद्धा.८।।

श्री सीमंधर स्वामीये, ए गिरि महिमा विलास।
इन्द्र नी आगे वर्णव्यो, तिणे ए इन्द्रप्रकाश।। सिद्धा.९।।

दस कोटि अणुव्रतधरा, भक्त जमाड़े सार।
जैन तीरथ यात्रा करे, लाभ तणो नहीं पार।।

तेह थकी सिद्धाचले, एक मुनि ने दान।
देतां लाभ घणो हुवे, महातीरथ अभिधान।। सिद्धा.१०।।

प्रायः ए गिरि शाश्वतो, रहेशे काल अनन्त।
शत्रुंजय महातम सुणी, नमो शाश्वत गिरि सन्त।।सिद्धा.११।।

गौ, नारी, बालक, मुनि, चउ हत्या करनार।
यात्रा करतां कार्तिकी, न रहे पाप लगार।।

ते परदारा लंपटी चोरी ना करनार।
देवद्रव्य, गुरुद्रव्य ना, जे वली चोरण हार।।

चैत्री, कार्तिकी पूनमे, करे यात्रा हणे ठाम।
तप तपतां पातिक गले, तिणे दृढ़शक्ति नाम।। सिद्धा.१२।।

भव भय पामी नीकल्या थावच्चा सुत जेह।
सहस मुनिशुं शिववर्या, मुक्ति निलय गिरि तेह।।सिद्धा.१३।।

चंदा, सूरज बिहुं जणा, ऊभा इणे गिरिशृंग।
वधावियो वर्णन करी, पुष्पदंत गिरि रंग।। सिद्धा.१४।।

कर्म कठण भव-जल तजी, इहां पाम्या शिव सद्म।
प्राणी पद्म निरंजनी, वंदो गिरि महापद्म।। सिद्धा.१५।।

शिववहु विवाह उत्सवे, मंडप रचियो सार।
मुनिवर वर बैठक भणी, पृथ्वीपीठ मनोहार।। सिद्धा.१६।।

श्री सुभद्रगिरि नमो, भद्र ते मंगल रूप।
जल तरु रज गिरिवर तणी, शीष चढावे भूप।।सिद्धा.१७।।

विद्याधर सुर अप्सरा, नदी शेत्रुंजी विलास।
करता हरता पाप ने, भजिये भवि कैलास।। सिद्धा.१८।।

बीजा निर्वाणी प्रभु, गई चौवीसी मोझार।
तस गणधर मुनि मां वडा, नामे कदंब अणगार।।

प्रभु वचने अणसण करी, मुक्तिपुरीमां वास।
नामे कदम्बगिरि नमो, तो होय लील विलास।। सिद्धा.१९।।

पाताले जस मूल छे, उज्ज्वलगिरि नुं सार।
त्रिकरण योगे वंदतां, अल्प होय संसार।। सिद्धा.२०।।

तन, मन, धन, सुत, वल्लभा, स्वर्गादिक सुख भोग।
जे वंछे ते संपजे, शिवरमणी-संजोग।।
विमलाचल परमेष्ठी नुं, ध्यान धरे षट्मास।
तेज अपूरव विस्तरे, पूरे सघली आश।।

त्रीजे भव सिद्धि लहे, ए पण प्रायिक वाच।
उत्कृष्टा परिणाम थी, अंतरमुहूरत साच।।

सर्व कामदायक नमो, नाम करी ओलखाण।
श्री शुभवीर विजय प्रभु नमतां क्रोड कल्याण।। सिद्धा.२१।।

***

इस प्रकार शत्रुंजय तप, पुंडरिक तप, ज्ञान पंचमी, अक्षय तृतीया आदि तप इस गिरि पर विशेष फलदायी होते हैं।

गिरनार तीर्थ

मूलनायक नेमिनाथ भगवान

रैवतगिरिराज गिरनार महातीर्थ

यह तीर्थ गुजरात प्रान्त के जूनागढ़ जिले की पावनभूमि पर स्थित है। चौदह राजलोक में लोकोत्तर ऐसे जिनशासन के तीन भुवन में सर्वोत्कृष्ट तीर्थ रुप शत्रुंजय तीर्थ और गिरनार महातीर्थ की गणना होती हैं। भारत भर के विविध धर्म संप्रदायों में अपने अपने धर्मग्रथों में अनेक प्रकार से गिरनार महातीर्थ की महिमा का वर्णन किया गया है। जैन शासन में दिगंबर और श्वेताम्बर धर्म संप्रदायों के अनेक भक्तजनों की श्रद्धा का प्रतीक यह गिरनार गिरिवर बना हुआ है। ऐसे महान जगप्रसिद्ध श्री रैवतगिरिराज गिरनार महातीर्थ के इतिहास और वर्तमान में विराजित तीर्थंकर भगवंत श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा के इतिहास पर हम रोशनी डालते है।

ई. सन् की प्रथम शताब्दी में भी इस क्षेत्र में जैन धर्म भलीभांति फूलता-फलता रहा। षट्खण्डागम के टीकाकार वीरसेनाचार्य के अनुसार वीर निर्वाण से ६८३ वर्ष पश्चात् श्रुतज्ञानी आचार्यों की अविच्छिन्न परम्परा में धरसेनाचार्य हुए। वे गिरनार की चन्द्रगुहा में रहते थे। वहीं उन्होंने *पुष्पदन्त और भूतबलि नामक शिष्यों को बुलाकर श्रुतज्ञान से परिचित* कराया, जिसके आधार पर उन्होंने द्रविड देश में जाकर षट्खण्डागम की सूत्र रूप में रचना की। जूनागढ़ के समीप प्राचीन जैन गुफाओं का पता चला है, जो आज बाबाप्यारा मठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से एक गुफा से एक खण्डित शिलालेख मिला है, जो क्षत्रपवंशीय राजा

जयदामन के पौत्र रुद्रसिंह द्वारा उत्कीर्ण कराया गया है। इसमें जैन पारिभाषिक शब्द जरामरण, केवलज्ञान आदि का उल्लेख है। गुफा में भद्रासन, मीनयुगल, स्वास्तिक आदि अष्टमङ्गलों का भी अंकन है। ढंक नामक स्थान पर भी इसी काल की गुफाओं का पता चला है। इन गुफाओं से आदिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमायें मिली हैं, जो इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि ई. सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में इस क्षेत्र में जैन धर्म लोकप्रिय हो चुका था।

गिरनार की महिमा

1. गिरनार गिरिवर भी शत्रुंजयगिरि की तरह ही शाश्वत है। पाँचवे आरे के अंत में जब शत्रुंजयगिरि की ऊँचाई घटकर सात हाथ होगी तब गिरनार गिरिराज की ऊँचाई सौ धनुष रहेगी।
2. रैवतगिरि (गिरनार) शत्रुंजयगिरि का पाँचवा शिखर होने के कारण वह पाँचवा ज्ञान अर्थात केवलज्ञान दिलानेवाला है।
3. यह मनोहर गिरनार समवसरण की शोभा धारण करता है। क्योंकि वहाँ विस्तार के मध्य में चैत्यवृक्ष के जैसा मुख्यशिखर है और गढ जैसे छोटे छोटे पर्वत है। मानो चारों दिशा में झरने बह रहे हों, ऐसे चार द्वार, चार पर्वत जैसे शोभते हैं।
4. गिरनार पर अनंत तीर्थंकर आये हुए हैं और यहाँ पर महासिद्धि अर्थात मोक्षपद पाया है। दूसरे अनंत तीर्थंकरों के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक यहाँ हो चुके हैं। वैसे ही अनेक मुनियों ने यहाँ मोक्षपद को प्राप्त किया है।
5. गत चौबीशी में हुए तीर्थंकर 1) श्री नमीश्वर भगवान, 2) श्री अनिल भगवान, 3) श्री यशोधर भगवान, 4) श्री कृतार्थ भगवान, 5) श्री जिनेश्वर भगवान, 6) श्री शुद्धमति भगवान, 7) श्री शिवंकर भगवान, 8)श्री स्पंदन भगवान नामक आठ तीर्थंकर भगंवतों के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक और अन्य दो तीर्थंकर भगंवतों का मात्र मोक्ष कल्याणक गिरनार गिरिवर पर हुए थे।

6. वर्तमान चौबीशी के बाइसवें तीर्थकर बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक गिरनार पर हुए हैं। उसमें उनकी दीक्षा और केवलज्ञान सहसाम्रवन में तथा मोक्ष कल्याणक गिरनार की पाँचवी टूंक पर हुआ है।

7. आगामी चौवीसी में होनेवाले तीर्थंकर 1) श्री पद्मनाभ भगवान, 2) श्री सुरदेव भगवान, 3) श्री सुपार्श्व भगवान, 4) श्री स्वयंप्रभु भगवान, 5) श्री सर्वानुभूति भगवान, 6) श्री देवश्रुत भगवान, 7) श्री उदय भगवान, 8)श्री पेढाल भगवान, 9) श्री पोटील भगवान, 10) श्री सत्कीर्ति भगवान, 11) श्री सुव्रत भगवान, 12) श्री अमम भगवान, 13) श्री निष्कषाय भगवान, 14) श्री निष्कुलाक भगवान, 15) श्री निर्मम भगवान, 16) श्री चित्रगुप्त भगवान, 17) श्री समाधि भगवान, 18) श्री संवर भगवान, 19) श्री यशोधर भगवान, 20) श्री विजय भगवान, 21) श्री मल्लिजिन भगवान, 22) श्री देव भगवान इन बाईस तीर्थंकर परमात्मा का मात्र मोक्ष कल्याणक और 23) श्री अनंतवीर्य भगवान, 24) श्री भद्रकृत भगवान इन दोनों तीर्थंकर भगवानों का दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक भविष्य में इस महान गिरनार गिरिराज पर्वत पर होगा।

8. गिरनार महातीर्थ की भक्ति द्वारा श्री नेमिनाथ भगवान के आठ भाई रहनेमि, शांब, प्रद्युम्न आदि अनेक कुमार, कृष्ण महाराजा की आठ पटरानियाँ, साध्वी राजीमतिश्रीजी आदि अनेक भव्यत्माओं ने इस गिरिराज पर मोक्ष पद को प्राप्त किया है। कृष्ण महाराजा ने तो तीर्थ भक्ति के प्रभाव से तीर्थंकर नामकर्म बांधा है, इसलिए उनकी आत्मा आनेवाली चौबीशी में बारहवें तीर्थंकर श्री अमम स्वामी बन इस गिरिराज पर मोक्ष पद प्राप्त करेंगे।

9. गिरनार महातीर्थ तथा नेमिनाथ भगवान के प्रति अत्यंत राग के प्रभाव से, धामणउल्ली गाँव के धार नामक व्यापारी के, पाँच पुत्र 1) कालमेघ, 2) मेघनाद, 3) भैरव, 4) एकपद और 5) त्रैलोक्यपद ये पाँचों पुत्र मरकर तीर्थ में क्षेत्राधिपति देव बने।

10. स्वर्गलोक, पाताललोक और मृत्युलोक के चैत्यों में सुर, असुर और राजा गिरनार पर्वत के आकार को हमेशा पूजते है।

11. गिरनार महातीर्थ में विश्व की सब से प्राचीन मूलनायक रूप में विराजमान श्री नेमिनाथ भगवान की मूर्ति लगभग 1,65,735 वर्ष न्यून (कम) ऐसे 20 कोडाकोडी सागरोपम वर्ष प्राचीन है। जो गत चौबीशी के तीसरे तीर्थंकर श्री सागर भगवान के काल में ब्रह्मेन्द्र द्वारा बनाई गई थी। इस प्रतिमाजी को प्रतिष्ठित किये लगभग 84,785 वर्ष हुए हैं। मूर्ति इसी स्थान पर आगे लगभग 18,435 वर्ष तक पूजी जायेगी। उसके बाद शासन अधिष्ठायिका देवी द्वारा इस प्रतिमाजी को पाताललोक में ले जाकर पूजी जायेगी।

12. गिरनार पर इंद्र महाराजा ने वज्र से छिद्र करके सोने के बलानक झरोखेवाले चाँदी के चैत्य बनाकर, मध्यभाग में श्री नेमिनाथ परमात्मा की चालीस हाथ ऊँचाई वाली श्यामवर्ण रत्न की मूर्ति स्थापित की थी।

13. इंद्र महाराजा ने जैसा पहले बनाया था, वैसा पूर्वाभिमुख जिनालय श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण स्थान पर भी बनाया था।

14. गिरनार में एक समय में कल्याण के कारणस्वरुप छत्रशिला, अक्षरशिला, घंटाशिला, अंजनशिला, ज्ञानशिला, बिन्दुशिला और सिद्धशिला आदि शिलाएँ शोभित थीं।

15. गिरनार महातीर्थ में निवास करने वाले तिर्यंचों (जानवर) को भी आठ भव के अंदर सिद्धिपद प्राप्त होता है।

16. गिरनार महातीर्थ की मिट्टी को गुरुगम के योग से तेल और घी के साथ मिलाकर अग्नि में गरम करने से सुवर्णमय बन जाती है।

17. भद्रशाला आदि वन में सर्व ऋतुओं मे सर्व जाति के फूल खिलते हैं। जल और फल सहित भद्रशाला आदि वन से घिरा हुआ यह रमणीय गिरनार पर्वत इंद्रों का क्रीडापर्वत है।

18. गिरनार महातीर्थ में हर एक शिखर के ऊपर जल, स्थल और आकाश में घूमने वाले जो जीव होते हैं, वे सब तीन भव में मोक्ष प्राप्त करते है।

19. गिरनार महातीर्थ पर वृक्ष, पाषाण, पृथ्वीकाय, अपकाय, वायुकाय और अग्निकाय के जीव हैं वे व्यक्त चेतनावाले नहीं होते हुए भी इस तीर्थ के प्रभाव से कुछ काल में मोक्ष प्राप्त करने वाले होते हैं।

20. गिरनार महातीर्थ पर श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा के अवसर पर, प्रभुजी के स्नात्राभिषेक के लिए तीनों लोक की नदियाँ, विशाल गजपदकुंड में आकर समाई थीं।

21. गिरनार महातीर्थ में 'मोक्षलक्ष्मी' के मुख रूप रहे हुए 'गजेन्द्रपद' नामक विशाल कुंड के पवित्र जल के स्पर्श से ही अनेक जन्मों के पापों का नाश होता है।

22. जगत में कोई भी ऐसी औषधि, सुवर्णादि सिद्धियाँ और रसकूपिकाएँ नहीं, जो गिरनार तीर्थ पर न मिलें।

23. सहसाम्रवन में नेमिनाथ भगवान के दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए थे।

24. सहसाम्रवन में करोडों देवताओं ने श्री नेमिनाथ भगवान के प्रथम और अंतिम समवसरण की रचना की थी। प्रभुजी ने यहाँ प्रथम और अंतिम देशना (प्रवचन) दी थी।

25. सहसाम्रवन में कृष्ण वासुदेव द्वारा रजत, सुवर्ण और रत्नजडित प्रतिमा युक्त तीन जिनालयों का निर्माण हुआ था।

26. सहसाम्रवन में सोने के चैत्यों में मनोहर चौबीसी का निर्माण किया गया था।

27. सहसाम्रवन की एक गुफा में भूत, भविष्य और वर्तमान ऐसे तीन चौबीसी के बहत्तर तीर्थकरों की प्रतिमाजी विराजमान हैं।

28. सहसाम्रवन में श्री रहनेमिजी और साध्वी राजीमतिश्रीजी आदि मोक्षपद प्राप्त कर चुके है।

29. सहसाम्रवन में अभी भी प्राचीन कालीन श्री नेमिनाथ परमात्मा की प्रतिमायुक्त अद्भुत समवसरण मंदिर है।

30. गिरनार महातीर्थ की पहली टूंक पर अभी भी चौदह-चौदह बेमिसाल जिनालय पर्वत के ऊपर तिलक समान शोभित हो रहे हैं।

31. भारत भर में मूलनायक के रूप में तीर्थंकर नहीं होते हुए भी सामान्य केवली सिद्धात्मा श्री रहनेमिजी का एकमात्र जिनालय गिरनार महातीर्थ पर सहसाम्रवन में बना हुआ है।

32. श्री हेमचंद्राचार्य, श्री बप्पभटसूरि, श्री वस्तुपाल-तेजपाल, श्री पेथडशा आदि अनेक पुण्यात्माओं को सहायता करने वाली, गिरनार महातीर्थ की अधिष्ठायिका देवी श्री अंबिका देवीजी आज भी यहाँ मौजूद है।

रैवतगिरि-कल्प संक्षेप

श्री नेमिनाथ जिनेश्वर को मस्तक नमाकर-नमस्कार कर, रैवतगिरिराज-गिरनार का कल्प जैसा श्री वज्रस्वामी के शिष्य और पादलिप्तसूरि ने कहा है उसी का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है-

छत्रशिला के समीप शिलासन पर भगवान श्री नेमिनाथ ने दीक्षा ली, सहस्राम्रवन में उन्हें केवलज्ञान हुआ, लक्खाराम में देशना दी और 'अवलोकन' में उच्च शिखर पर निर्वाण पाये। रैवतगिरि की मेखला में श्रीकृष्ण ने वहाँ तीन कल्याणक के स्वर्णरत्नमय प्रतिमालंकृत जीवित स्वामी के तीन चैत्य कराके अम्बिका देवी की प्रतिमा भी कराई। इन्द्र ने भी वज्र से पहाड़ को कोर के स्वर्ण बलानक और रौप्यमय चैत्य, रत्नमय वर्ण और प्रमाणोपेत प्रतिमा, अम्बा शिखर पर रंगमण्डप, अवलोकन शिखर, बालानक मण्डप में शाम्ब ने इतने कराये। श्री नेमिनाथ के मुख से निर्वाण स्थान ज्ञातकर निर्वाण के पश्चात् श्रीकृष्ण ने सिद्धविनायक प्रतिहार की प्रतिमा स्थापित थी। तथा दामोदर के अनुरूप १. कालमेघ, २. मेघनाद, ३. गिरिविदारण, ४. कपाट, ५. सिंहनाद, ६. खोड़िया और ७. रैवत तीव्रतप क्रीडन से क्षेत्रपाल उत्पन्न हुए। इनमें मेघनाद सम्यग्दृष्टि और भगवान नेमिनाथ का चरणभक्त है। गिरिविदारण ने कंचन बालानक में पाँच उद्धार विकुर्वण किये।

वर्तमान अवसर्पिणी काल के भरतक्षेत्र की भव्य भूमि पर बाइसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण के 2000 वर्ष व्यतीत हो चुके

थे। उसी काल में सोरठ देश की धन्यधरा पर कांपिल्य नामक नगर में रत्नसार नामक धनिक श्रावक रहता था। अचानक 12 वर्ष तक दुष्काल का समय आया। पशु तो क्या मानव भी पानी के अभाव से मरने लगे। उस समय आजीविका की तकलीफ होने से धनोपार्जन करने के लिए रत्नसार श्रावक देशान्तर घूमते घूमते काशमीर देश के नगर में जाकर रहने लगा। स्थान बदलते ही अपने प्रचंड पुण्योदय से दिन प्रतिदिन अपार धन कमाने लगा। संपत्ति को सद्कार्य में लगाने के उद्देश्य से श्री आनंदसूरीश्वरजी महाराज की निश्रा में सिद्धाचल, गिरनार आदि महातीर्थों का पैदल संघ यात्रा का प्रयाण किया। संघ श्री आनंदसूरीजी गुरु की निश्रा में सिद्धाचल सिद्धगिरि के दर्शन करके रैवतगिरि महातीर्थ के समणीय वातावरण में गत चौबीसी और वर्तमान चौबीसी के बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण स्थली की सिद्धभूमि की सुवास लेने लगा। सहसाम्रवन में भगवान के केवलज्ञान स्थल पर विराजित प्रतिमा की पूजा कर रत्नसार श्रावक और संघ पहाडी पर शिखर की तरफ आगे बढने लगे। इस समय रास्ते में जाते हुए सभी ने छत्रशिला को नीचे से कंपायमान होते हुए देखा। रत्नसार ने तुरंत ही अवधिज्ञानी गुरु आनंदसूरि जी से छत्र के कंपन होने का कारण पूछा तो, गुरु ने अवधिज्ञान के सामर्थ्य से कहा- 'हे रत्नसार! तेरे द्वारा इस रैवतगिरि तीर्थ का नाश होगा और तेरे द्वारा ही इस तीर्थ का उद्धार होगा।' जिनेश्वर परमात्मा का शासन जिसके रोम रोम में बसा था, वह रत्नसार श्रावक इस महातीर्थ के नाश में निमित्त बनने के लिए कैसे तैयार हो ? रत्नसार श्रावक अत्यन्त खेद के साथ दूर रहकर ही वंदन कर वापस जा रहे थे। तब गुरु कहतें हैं, 'रतन ! इस तीर्थ का नाश तेरे द्वारा होगा, इसका अर्थ तेरा अनुसरण करनेवाले श्रावकों के द्वारा होगा। तेरे द्वारा तो इस तीर्थ का उद्धार होगा। इसलिए खेद मत कर।' यह सुनकर रत्नसार श्रावक उत्साहपूर्वक मंदिर के मुख्य द्वार से मंदिर मे प्रवेश करता है। हर्ष

से भरे सारे यात्री गजेन्द्रपद कुंड (हाथी पगला) से शुद्ध जल निकालकर स्नान आदि कार्य करके उत्तम वस्त्र धारण कर गजपदकुंड के जल को कुंभ में ग्रहण कर, जैन धर्म में दृढ ऐसे विमलराजा के द्वारा रैवतगिरि पर स्थापित लेपमयी श्री नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा के काष्ठमय प्रासाद में प्रवेश करते हैं। सभी यात्री हर्षविभोर बनकर कुंड से कुंभ भर-भर कर प्रक्षालन कर रहे थे। इस अवसर पर अनेक बार देवताओं और पुजारी के द्वारा निषेध करने पर भी उनकी बात की अवमानना कर, हर्ष के आवेश में ज्यादा पानी के द्वारा प्रक्षालन करने से जल की एकधारा के प्रवाह के प्रहार से लेप्यमयी प्रतिमा का लेप गलने लगा और थोडी ही देर में वह प्रतिमा गिली मिटी के पिंड स्वरूप बनने लगी। इस दृश्य को देखकर रत्नसार श्रावक आघात के साथ शोकातुर बना और मूर्च्छित हुआ। इससे सकल संघ शोक में डूब गया।

रत्नसार श्रावक पर शीतल जल का उपचार करने पर थोडी देर में वो स्वस्थ बन गया। प्रभुजी की प्रतिमा गलने से रत्नसार श्रावक आकुल व्याकुल होकर विलाप करते हुए स्वयं को महापापी और तीर्थ विनाशी मानने लगा। इस भारी मन के साथ रत्नसार श्रावक चारों आहार का त्याग कर वहीं प्रभु के सामने आसन लगा कर बैठ गये। समय बीतता गया। अनेक विघ्न आने पर भी रत्नसार श्रावक अपने संकल्प में मजबूत रहा। रत्नसार श्रावक की निश्चलता से प्रसन्न होकर शासन अधिष्ठायिका देवी श्री अंबिका देवी एक महिने के अन्त में प्रगट हुई। देवी कहती है, 'हे वत्स! तू धन्य है जो इस तीर्थ का उद्धार तेरे हाथों से होना है। उस प्रतिमा का पुराना लेप नाश होने पर नया लेप होता ही रहता है। जिस तरह जीर्णवस्त्र निकालकर नये वस्त्र ग्रहण किए जाते हैं, उसी प्रकार तुम भी उस प्रतिमा का नया लेप कराकर पुनः प्रतिष्ठा करवाओ!' देवी के वचन सुनकर रत्नसार श्रावक कहता है कि, 'माँ! आप ऐसा न उच्चारो! पूर्वबिंब का नाश

करके मैं भारी कर्मी बना हूँ और आपकी आज्ञा से मूर्ति का लेप करवाकर पुनः स्थापना करुँ तो भविष्य में पुनः मेरी तरह अन्य कोई अज्ञानी इस बिंब का नाश करने वाला बनेगा। आप यदि मेरे तप से प्रसन्न हों, तो मुझे ऐसी कोई अभंग मूर्ति दीजिए जिससे भविष्य में किसी के द्वारा इसका नाश न हो सके और भक्तजन भाव से जलाभिषेक करके अपनी इच्छाओं को पूर्ण कर सकें ।'

देवी रत्नसार श्रावक के वचन को सुना अनसुना कर अदृश्य हो गयी। देवी को अदृश्य होते देखकर अनुपम सत्त्व का धनी रत्नसार श्रावक पुनः देवी के ध्यान में बैठ गया। रत्नसार के महासत्त्व की कसौटी करने के लिए देवी ने अनेक उपसर्गों के द्वारा उसे ध्यान से चलायमान करने की कोशिश की परन्तु रत्नसार श्रावक अपनी साधना में निश्चल रहा। तब गर्जना करते हुए सिंहवाहन के ऊपर बैठकर चारों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई देवी पुनः प्रत्यक्ष होकर कहती है, 'हे वत्स ! तेरे दृढ सत्त्व से मैं प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वरदान माँगो।' देवी के इन वचनों को सुनकर रत्नसार श्रावक कहता है, 'हे माँ ! इस महातीर्थ के उद्धार के सिवाय मेरा अन्य कोई मनोरथ नहीं है, आप मुझे श्री नेमिनाथ भगवान की ऐसी वज्रमय मूर्ति दीजिए जो शाश्वत रहे, और जिसकी पूजा से मेरा जन्म कृतार्थ बने एवं पूजा करनेवाले अन्य जीव भी हर्षोल्लास को प्राप्त करें!' तब देवी कहती है, 'सर्वज्ञ भगवंत ने तेरे द्वारा तीर्थ का उद्धार होगा ऐसा कहा है इसलिए तुम मेरे साथ चलो! मेरे पीछे पीछे इधर उधर देखे बिना चले आओ'। रत्नसार श्रावक देवी के पीछे पीछे चलने लगा। बायीं तरफ के अन्य शिखरों को छोडती हुई देवी पूर्व दिशा की तरफ, हिमाद्रिपर्वत के कंचन शिखर पर गयी, जहाँ सुवर्ण नामक, गुफा के पास आकर देवी सिद्धविनायक नामक अधिष्ठायक देव को विनती करती है, 'भद्र! इन्द्र महाराजा के आदेश से आप इस शिखर के रक्षक हो अतः यह द्वार खोलो।

देवी के आदेश से सिद्धविनायक देव ने तुरंत ही गुफा के द्वार खोले, तब अंदर से दिव्य तेजपुंज प्रगट हुआ और आगे-आगे देवी और पीछे-पीछे रत्नसार श्रावक ने इस दिव्य गुफा में प्रवेश किया। सुवर्ण मंदिर में बिराजमान विविध मणि, रत्नादि की मूर्तियों को बताते हुए अंबिका देवी कहती है, 'हे रतन! यह मूर्ति सौधर्मेन्द्र ने बनायी है, यह मूर्ति धरणेन्द्र ने पद्मरागमणि से बनायी है, यह मूर्तियाँ भरत महाराजा, आदित्ययशा, बाहुबली आदि के द्वारा रत्न, माणेक आदि से बनवायी हुई हैं तथा दीर्घकाल तक उन्होंने इन बिंबो की पूजा भक्ति की है। यह ब्रह्मेन्द्र के द्वारा रत्नमणि का सार ग्रहण करके बनवायी गई है जो शाश्वत मूर्ति के समान असंख्य काल तक उनके ब्रह्मलोक में पूजी गयी है। इन मूर्तियों में से जो पसंद हो वह ग्रहण करो।' मानव के मन को चुराने वाले मनोरम्य देवाधिदेव की दिव्य मूर्तियों को देखकर रत्नसार श्रावक प्रसन्नता के शिखर को पार करने लगा। सभी प्रतिमाएँ बहुत सुंदर थी, कौन सी प्रतिमा पसंद करनी इसका निर्णय करना बहुत कठिन बन गया था। अंत मे उसने मणिरत्नादिमय जिनबिंब को पसंद किया तब अंबिका देवी ने कहा, 'हे वत्स! भविष्य मे दूषमकाल में लोग लज्जारहित, निष्ठुर, लोभ से ग्रस्त एवं मर्यादा रहित होंगे। वे इस मणिरत्नमय जिनबिंब की आशातना करेंगे। तुझे इस तीर्थ का उद्धार कर के बहुत पश्चाताप होगा, इसलिए इस जिनबिंब का आग्रह छोडकर तुम ब्रह्मेन्द्र द्वारा रत्न माणिक्य के सार से बनवायी गयी सुदृढ, बिजली, आंधी, अग्नि, जल, लोहा, पाषाण अथवा वज्र से भी अभेद्य महाप्रभावक इस प्रतिमा को ग्रहण करो!' इतना कहकर देवी ने 12 योजन दूर तक प्रकाशित होनेवाले तेजोमय मंडन को अपनी दिव्य शक्ति से खींचकर सामान्य पाषाण के समान तेजोमयप्रभा रहित प्रतिमा बनाकर कहा, 'अब इस मूर्ति को कच्चे सूत के तार से बाँधकर आगे-पीछे या बाजू में देखे बिना शीघ्रातीशीघ्र ले जाओ! यदि मार्ग में कहीं पर भी विराम

करोगे तो यह मूर्ति उसी स्थान पर स्थित हो जाएगी।' रत्नसार श्रावक को इस तरह की सूचना देकर देवी अपने स्वस्थान पर वापिस लौट जाती है।

रत्नसार श्रावक देवी की कृपा से प्रतिमा को लेकर आदेशानुसार आगे-पीछे या बाजू में देखे बिना अस्खलित गति से कच्चे सूत के तार से बाँधे गए इस बिंब को जिनालय के मुख्य द्वार तक लाते है। उस अवसर पर वह सोचता है कि जिनालय में स्थित पूर्व की लेपमय प्रतिमा को हटाकर अंदर की भूमि की प्रमार्जना कर सफाई कर नवीन प्रतिमा को स्थापित करुँ, प्रासाद के अंदर की सफाई कर बाहर आकर रत्नसार श्रावक ने जब नवीन प्रतिमा को अंदर ले जाने का प्रयास किया, तब वह प्रतिमा उसी स्थान पर मेरुपर्वत की तरह करोडों मनुष्यों से भी चलायमान न हो सके, उस तरह अचल बन गयी। इस पर रत्नसार श्रावक आहार पानी का त्याग कर देवी की साधना करने लगा। तब सात दिन बाद देवी प्रकट होती है और कहती है, 'हे वत्स ! मैंने तो तुम्हें पहले ही कहा था कि मार्ग में कही पर भी विराम किए बगैर इस प्रतिमा को ले जाकर पधराना! व्यर्थ प्रयास करने का कोई अर्थ नहीं। अब किसी भी हालत में यह प्रतिमा नहीं हटेगी। अब इस प्रतिमा को यथावत रखकर पश्चिमाभिमुख द्वारवाला प्रासाद बनवाओ! अन्य तीर्थ में तो उद्धार करने वाले दूसरे कई मिलेंगे, परन्तु हाल में इस तीर्थ के उद्धारक तुम ही हो इसीलिए इस कार्य में विलंब मत करो।'

रत्नसार श्रावक आज्ञानुसार पश्चिमाभिमुख प्रासाद बनवाता है। सकल संघ के साथ हर्षोल्लास पूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव करवाता है, जिसमें आचार्यों के द्वारा सूरिमंत्र के पदों से आकर्षित बने हुए देवताओं ने उस बिंब और चैत्य को अधिष्ठायक युक्त बनाया। रत्नसार श्रावक अष्टकर्मनाशक अष्टप्रकारी पूजा कर, लोकोत्तर ऐसे जिनशासन की गगनचुंबी गरिमा को दर्शानेवाली महाध्वजा को लहराकर, उदारतापूर्वक दानादि विधि पूर्ण कर, भक्ति से नम्र

बनकर, नेमिनाथ प्रभु के सन्मुख खडे रहकर स्तुति करता है। 'हे अनंत! जगन्नाथ! अव्यक्त! निरंजन! चिदानंदमय! और त्रैलोक्यतारक ऐसे स्वामी! आप जय को प्राप्त हों, हे प्रभु ! जंगम और स्थावर देह में आप सदा शाश्वत हैं, अप्रच्युत और अनुत्पन्न हैं, और रोग से विवर्जित हैं। देवताओं से भी अचलित हैं, देव, दानव और मानव से पूजित हैं, अचिन्त्य महिमावंत हैं, उदार हैं, द्रव्य और भाव शत्रुओं के समूह को जीतनेवाले हैं, मस्तक पर तीन छत्र से शोभायमान, दोनों तरफ चामर से विंझे जाते, और अष्टप्रातिहार्य की शोभा से उदार ऐसे, हे विश्व के आधार! प्रभु! आपको नमस्कार हो!' भावविभोर बनकर स्तुति करने के बाद रत्नसार श्रावक पंचांग प्रणिपात सहित भूतल को स्पर्श कर अत्यन्त रोमांचित होकर, साक्षात् श्री नेमिनाथ प्रभु को ही देखता हो, उस तरह उस प्रतिमा को प्रणाम करता है। उस समय उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर अंबिका देवी क्षेत्रपाल देवताओं के साथ वहाँ आकर और रत्नसार श्रावक के गले में पारिजात के फूलों की माला पहनाती है। बाद में रत्नसार श्रावक कृतार्थ होकर स्वजन्म को सफल मानकर सौराष्ट्र की भूमि को जिनप्रासादों से विभूषित कर सात क्षेत्रों मे संपत्ति स्वरूपबीज को बोनेवाला, वह परंपरा से मोक्षसुख का स्वामी बनेगा।

सज्जनमंत्री के दृढतापूर्वक, निर्भय भरे जवाब से महाराज पल दो पल में ठंडे हो गये। अपने निरर्थक गुस्से के लिए उनको पश्चाताप होने लगा। पूरे दिन नगरवासियों के मुँह से मंत्री की कार्यकुशलता और राजकार्य की खुले दिल से प्रशंसा सुनी, साथ में सज्जनमंत्री के द्वारा बनवाये गए जिनालय के सुदंर जिर्णोद्धार के बारे में भी सुना। सूर्यास्त के समय महाराज ने मंत्री को बुलाकर सुबह गिरनार गिरिवर पर आरोहण करने की अपनी भावना व्यक्त की। मंगलमय प्रभात में महाराज और मंत्री गिरिवर आरोहण कर रहे थे, उस समय शिखर पर शोभित धवलचैत्य और

आकाश को छूने के लिए उडती ध्वजा की शोभा को देखकर, महाराज पूछते है, 'कौन भाग्यवान माता पिता है? जिसके संतान ने ऐसे सुंदर, मनोहर जिनालयों की हारमाला का सर्जन किया? तब मंत्री कहता है, 'स्वामी! आप! पूज्यश्री के माता-पिता का ही यह सौभाग्य है जिससे आप जैसे महापुण्यशाली के प्रताप से यह अप्रतिम सर्जन हुआ है। आश्चर्यचकित महाराज पलभर के लिए मंत्रमुग्ध बनकर इस बात का रहस्य मंत्री को पूछते हैं तब मंत्री कहता है, 'हे स्वामी ! आपके पुण्यप्रभाव से ही यह अप्रतिम सर्जन हुआ है और आपके पिता जी की स्मृति में ऐसे देदिप्यमान *जिनालयों का सर्जन किया है। सोरठ देश की धन्यधरा की तीन तीन साल की आमदनी उस जिनालय के नवनिर्माण में खर्च हुई हैं जिसके प्रभाव से ये मंदिर मन को मोहित कर रहे है। आप कृपालु ही सोरठ देश के* स्वामी हो इसलिए आपके पिता कर्णदेव और माता मीनलदेव धन्य बने हैं। 'कर्णप्रासाद' नामक इस जिनालय से गिरनार की शोभा में वृद्धि हुई है, जो आपके पिताजी की स्मृति को अविस्मरणीय बनाने में समर्थ है। फिर भी आप स्वामी को, सोरठ की 3 साल की आमदनी राजभंडार में जमा करवानी हो, तो एक एक पाई के साथ रकम भंडार में जमा करने के लिए, नजदीक के वणथली गाँव का श्रावक भीमा साथरिया, अकेला ही पूरी रकम भरने के लिए तैयार है और अगर जिर्णोद्धार का उत्कृष्ट लाभ लेकर आत्मभंडार में पुण्य जमा करवाना हो तो यह विकल्प भी आपके लिए खुला है।'

सज्जनमंत्री के इन शब्दों को सुनकर महाराज सिद्धराज मंत्री पर बहुत खुश होते है और कहते हैं, 'ऐसे मनोरम्य सुंदर जिनालयों का महामूल्यवान लाभ मिलता हो तो मुझे उन तीन साल की रकम की कोई चिंता नही। मंत्रीवर! आपने तो कमाल कर दिया। आपकी बुद्धि, कार्यपद्धति और वफादारी के लिए मेरे हृदय में बहुत गौरव हो रहा है। आपके लिए

मुझे जो शंका-कुशंका हुई उस के लिए मै क्षमा माँगता हूँ। आज मैं धन्य बन गया हूँ। इस तरफ मंत्रीश्वर के समाचार की राह देख रहा भीमा साथरिया बेचैन है, कि अभी तक सज्जनमंत्री की और से कोई समाचार क्यों नही आया? क्या मेरे मुँह तक आया हुआ पुण्य का यह अमृत कलश यूँ ही चला जायेगा? भीमा अधीर बना हुआ जूनागढ की तरफ प्रयाण करता है। वहा पहुँच कर मंत्री से रकम के समाचार नहीं भेजने का कारण पूछता है, तब सज्जनमंत्री ने हकीकत बताई तो भीमा को बहुत आघात लगा, हाथ में आई हुई पुण्य की घडी ऐसे ही निकल जाने से अवाचक बन गया। उसने कहा कि, 'मंत्रीश्वर जिर्णोद्धार के लिए दान में रखी हुई रकम अब मेरे कुछ काम की नहीं, इसलिए आप इस द्रव्य को स्वीकार करके उसका योग्य उपयोग करें।'

वंथली गाँव से भीमा साथरिया के धन की बैलगाडियाँ सज्जनमंत्री के आंगन में आकर खडी हुईं। विचक्षण बुद्धि सज्जन ने इस रकम से 'मेरकवक्षी' नामक जिनालय का और भीमा साथरिया की अविस्मरणीय स्मृति के लिए शिखर के जिनालय के समीप 'भीमकुंड' नामक एक विशाल कुंड का निर्माण करवाया।

श्री रैवतगिरिराज गिरनार की गौरवयात्रा

गिरनार महातीर्थ की तलहटी में श्री आदिनाथ भगवान के जिनालय में दर्शन कर गिरनार गिरिवर के प्रवेश द्वार के अंदर बायें हाथ की तरफ चढान में हनुमान जी का मंदिर आता है। दायें हाथ की तरफ बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान के चरण पादुका की देवकुलिका आती है। वह विशा श्रीमाली श्रावक लक्ष्मीचंद प्रागजी ने बंधवायी थी। उसमें श्री नेमिप्रभु की पूर्वाभिमुख चरणपादुका और शासन तथा तीर्थ की अधिष्ठायिका देवी श्री अंबिकादेवी की प्रतिमा पबासण की दीवार में है। गिरनार महातीर्थ की यात्रा के लिए पधारे हुए सभी भाविकजनों को यात्रा प्रांरभ करने से पहले इस देवकुलिका के दर्शन अवश्य करके यात्रा निर्विघ्नता परिपूर्ण हो इस भावना से शासन और तीर्थ के अधिष्ठायिका देवी को अवश्य प्रार्थना करनी चाहिए। गिरनार की यात्रा में सुगमता के लिए सं. 1212 में अंबड श्रावक ने सुव्यवस्थित सीढियाँ बनवाई। उसके बाद समय समय पर उसके उद्धार करवाने के लेख भी मिलते हैं।

इस देवकुलिका के दर्शन करके आगे 15 सीढियाँ चलने के बाद डोलीवालों का स्थान आता है। वहाँ से आगे बढने पर लगभग 85 सीढियों के पास पाँच पांडवों की देवकुलिका आती है, जिन में से चार देवकुलिका बायीं तरफ और एक देवकुलिका दायीं तरफ थी। आगे 200 सीढियों के पास चुनादेरी अथवा तपसी प्याऊ का स्थान आता है। आगे 500 सीढियों के पास दायीं तरफ छोडीया प्याऊ का स्थान आता है। वहाँ से आगे जाते हुए बायीं तरफ एक रायण वृक्ष आता है, जहाँ पानी की प्याऊ है। 800

सीढियों पर खोडियार माँ का स्थान आता है। आगे लगभग 1150 सीढियों के पास बायीं ओर जटाशंकर महादेव की देवकुलिका आती है। 1200 सीढियों पर एक नया विश्रामस्थान है। आगे 1500 सीढियों का स्थान धोंलीदेरी के नाम से पहचाना जाता है वहाँ पर भी विश्राम के लिए नया स्थान बनवाया गया है। आगे लगभग 1950 सीढियों का स्थान कालीदेरी के नाम से पहचाना जाता है। यहाँ जो पुराना मकान है, उस पर आज भी 'धनीपरब' की तख्ती देखने को मिलती है। आगे 2000 सीढियों के पास बायीं ओर कच्चे रास्ते पर आगे बढते हुए 'वेलनाथ बापु की समाधि' का स्थान आता है। कोई साहसी हो तो उसे उस स्थान से पहाड के मार्ग से सहसावन की तरफ जाने का छोटा रास्ता मिल सकता है। 2000 सीढियों से आगे जाते हुए लगभग 2200 सीढियों के पास 'भरथरी की गुफा' का स्थान आता है। 2300 सीढियों के पास माली प्याऊ आती है जहाँ राममंदिर है और प्याऊ के पास बायें हाथ की तरफ एक पत्थर में 'वि.सं. 1222 श्री श्रीमालज्ञातीय महं श्री राणिना सुत महं श्री अंबाकेन पट्टा कारिता।' ऐसा लेख देखने को मिलता है। यहाँ नजदीक में मीठे और शीतल जल का एक कुंड भी है जो वि.सं. 1244 में श्री प्रभानंदसूरी महाराज साहेब के उपदेश से का कार्यालय बंधवाया गया था।

इस मंदिर से आगे थोडे कठिन चढान के बाद लगभग 2450 सीढियों के पास 'काउस्सग्गीया का पत्थर' तथा प्राचीन 'हाथी पहाण' आता है। वैसे तो उस पहाड पर फिसलने का भय होने से अधिकृत व्यक्तियों के द्वारा अभी वहाँ पर सीमेन्ट कोंक्रीट का माल डालने के कारण वे पत्थर संपूर्णतया ढक गये है। वहाँ से आगे 2600 सीढियों के पास 'सती रणकदेवी का पत्थर' आता है और 2650 सीढियों के पास पहाड की एक दीवार पर 'स्ववास्ति श्री सं. 1683 वर्षे कार्तिक वदी 6 सोमे श्री गिरनारनी पूर्वनी पाजनो उद्धार श्री दीवाना संघे पुरुषा निमित्त श्रीमाल ज्ञातीय मां

सींघजी मेघजीए उद्धार कराव्यो' निम्नोक्त लेख आज भी देखने को मिलता है। वहाँ से थोडी सीढियाँ चढकर आगे बढते हुए लगभग 2820 सीढियों के पास दायीं ओर लोहे की जालीवाली एक देवकुलिका में जिनेश्वर परमात्मा की मूर्तियाँ खोदी हुई आज भी देखने को मिलती हैं। वहाँ से आगे 2900 सीढियों के पास सफेद कुंड आता है। आगे 3100 सीढियों के पास बायीं ओर की दीवार के एक झरोखे में खोडीयार माँ का स्थान आता है और 3200 सीढियों के पास 'खबूतरी' अथवा 'कबूतरी खाण' नामक स्थान में काले पत्थर में अनेक कोटर दिखायी देते है। लगभग 3550 सीढियों पर पंचेश्वरी का स्थान आता है। अभी वर्तमान में 'जय संतोषीमां', 'भारत माता का मंदिर', 'खोडियार माँ का मंदिर', 'वरुडी माँ का मंदिर', 'महाकाली का मंदिर', तथा 'कालिका माँ का मंदिर' के नाम से देवकुलिका आती हैं। वहाँ से आगे 3800 सीढियों के बाद उपरकोट के किल्ले का दरवाजा आता है जिसे देवकोट भी कहा जाता है। उस दरवाजे पर नरशी केशवजी ने मंजिल बंधवायी थी। जहाँ अभी वनसंरक्षण विभाग का कार्यालय देखने में आता है। इस द्वार से अंदर प्रवेश होते ही अनेक जिनालयों की हारमाला का प्रारंभ होता है।

(1) श्री नेमिनाथजी की टूंक:

इस किल्ले के मुख्य द्वार से प्रवेश करते हुए बायीं ओर श्री हनुमान जी की तथा दायीं ओर कालभैरव जी की देवकुलिका आती है। वहाँ से 15-20 कदम आगे बायीं ओर श्री नेमिनाथजी की टूंक में जाने का मुख्य द्वार आता है, जहाँ 'शेठ श्री देवचंद लक्ष्मीचंदनी पेढी गिरनार तीर्थ' ऐसा लिखित बोर्ड लगाया गया है। इस मुख्य द्वार से अदंर प्रवेश करते हुए बायीं और दायीं ओर पुजारी-चौकीदार-मेनेजर आदि कर्मचारियों के कमरे हैं। वहाँ से आगे जाने पर बायीं ओर पानी की प्याऊ और ऊपर नीचे यात्रियों के विश्राम के लिए धर्मशाला के कमरे बने हुए हैं। सामने की तरफ

यात्रियों के लिए शौचालय की व्यवस्था भी रखी गयी है। दायीं तरफ पेढी का आफिस आता है। आगे यात्रियों के लिए स्नानगृह बनाये हुए है। स्नान करने के लिए गरम पानी की व्यवस्था भी यहीं पर है। दायीं ओर पीने के लिए गरम पानी की व्यवस्था है। वहाँ से आगे गिरनार मंडन श्री नेमिनाथ परमात्मा के मुख्य जिनालय के दक्षिण दिशा तरफ का प्रवेश द्वार आता है। यह चौक 130 फुट चौडा और 170 फुट लम्बा है, जिसमें मुख्य जिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में 84 देवकुलिका हैं। जिनालय के दक्षिण द्वार के बाहर ही दायीं ओर श्री अंबिकादेवी की देवकुलिका है।

गिरनार महातीर्थ तथा श्री नेमिनाथ भगवान के शासन की अधिष्ठायिका देवी श्री अंबिका देवी की यहाँ सुंदर मूर्ति है। उसका अचिन्त्य प्रभाव है। जिनालय में प्रवेश करने से पहले उसके दर्शन अवश्य करने चाहिए।

(क) श्री नेमिनाथ जिनालय : श्री नेमिनाथ भगवान (61 इंच)

श्री नेमिनाथ जिनालय के प्रागंण में प्रवेश करते ही श्री नेमिनाथ भगवान के विशाल एवं भव्य गगनचुंबी शिखरबंध जिनालय के दर्शन होते हैं। इस जिनालय के दक्षिण द्वार से प्रवेश करते ही 41.6 फुट चौडा और 44.6 फुट लंबा रंगमंडप आता है। उसके मुख्य गर्भगृह में गिरनार गिरिभूषण श्री नेमिनाथ परमात्मा की मनहरणी श्यामवर्णी नयनरम्य प्रतिमा बिराजमान है। मूलनायक श्री नेमिनाथ परमात्मा की यह प्रतिमा पूरे विश्व में वर्तमान में सबसे प्राचीनतम प्रतिमा है। यह प्रतिमा 165750 वर्ष न्यून 20 कोडाकोडी सागरोपम वर्ष प्राचीन है। श्री नेमिनाथ भगवान के निर्वाण के 2000 वर्ष बाद रत्नसार श्रावक द्वारा इस प्रतिमा की गिरनार तीर्थ में प्रतिष्ठा कराई गयी थी। अरबों वर्ष तक पाँचवें देवलोक में तथा श्री नेमिनाथ प्रभु की हाजरी में द्वारिका नगरी में श्री कृष्ण के जिनालय में

यह प्रतिमा पूजी गयी थी। यह प्रतिमा रत्नसार द्वारा प्रतिष्ठित होने के बाद 103250 वर्ष तक इसी स्थान पर पूजी जायेगी, ऐसे श्री नेमिप्रभु के वचन होने से पाँचवे आरे के अंत तक यह प्रतिमा यहीं पूजी जायेगी। बाद में शासन देवी अंबिका के द्वारा यह प्रतिमा पाताल लोक में ले जाकर पूजी जायेगी। इस तरह यह प्रतिमा तीनों लोक में पूजी जायेगी। लगभग 84786 वर्ष से यह प्रतिमा इसी स्थान पर बिराजमान है।

मूलनायक की प्रदक्षिणा भूमि तथा रंगमंडप में तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमायें तथा यक्ष यक्षिणी एवं गुरु भगवंतों की प्रतिमायें बिराजमान हैं। इस रंगमंडप मे आगे 21 फुट चौडा और 38 फुट लम्बा दूसरा रंगमंडप आता है, जिसके मध्य मे गणधर भगवंतों की लगभग 840 चरण पादुका की जोड अलग अलग दो पबासण पर स्थापित की गया है। इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1694 चैत्र वदी दूज के दिन की गयी है। आस पास तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमायें बिराजमान की गयी हैं। इस जिनालय के बाहर प्रदक्षिणा भूमि में पश्चिम दिशा से शुरु करते हुए वि.सं. 1287 में प्रतिष्ठा किए हुए नंदीश्वर द्वीप का पाट, जिनप्रतिमायें, पद्मावती की मूर्ति, सम्मेतशिखरजी तीर्थ का पाट, शत्रुंजय तीर्थ का पाट, श्री नेमिनाथ परमात्मा के जीवन चरित्र का पाट, श्री महावीर स्वामी की पाटपरंपरा की चरण *पादुका, जिनशासन के विविध अधिष्ठायक देव-देवी की प्रतिमा, शासन* देवी अंबिका की देवकुलिका, श्री नेमिनाथ तथा श्री महावीर प्रभु की चरण पादुका, श्री विजयानंद सूरिश्वर (पू. आत्मारामजी) महाराज की प्रतिमा आदि स्थापित की गयी हैं।

प्रदक्षिणा भूमि के एक कमरे में श्री आदिनाथ भगवान, साध्वी राजीमतीश्री आदि की चरण पादुका तथा गिरनार तीर्थ का जीर्णोद्धार करने वाले प.पू.आ. नीतिसूरि महाराज की प्रतिमा बिराजमान है। उसी कमरे में एक *भूगर्भ में मूलनायक के रूप में संप्रतिकालीन, प्रगट प्रभावक अत्यन्त*

नयनरम्य श्री अमीझरा पार्श्वनाथ भगवान की 61 इंच की श्वेत वर्णी प्रतिमा बिराजमान है। प्रभुजी की मुखमुद्रा और हाथ के नाखून की अत्यन्त नाजुक कारीगरी दर्शनार्थियों के मन को हर लेती है।

(ख) जगमाल गोरधन का जिनालय : श्री आदिनाथ भगवान (31 इंच)

श्री नेमिनाथ भगवान के मुख्य जिनालय के ठीक पीछे श्री आदिनाथ भगवान का जिनालय है। इस जिनालय की प्रतिष्ठा पोरवाड ज्ञातीय श्री जगमाल गोरधन द्वारा आ. विजयजिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब की पावन निश्रा में वि.सं. 1848 वैशाख वदी 6 शुक्रवार के दिन करवायी गयी थी। श्री जगमाल गोरधन श्री गिरनारजी तीर्थ पर जिनालय के मुनीम का कर्तव्य निभाकर जिनालयों के संरक्षण का कार्य करते थे। श्री नेमिनाथ भगवान जी टूंक की प्रदक्षिणा भूमि से उत्तर दिशा की तरफ के द्वार से बाहर निकलते हुए अन्य टूंक के जिनालयों में जाने का मार्ग आता है। उसमें सर्वप्रथम काले पाषाण की ऊँची ऊँची सीढियाँ उतरते हुए बायीं तरफ मेरकवशी की टूंक आती है।

(2) मेरकवशी की टूंक:

मेरकवशी की टूंक के मुख्य जिनालय में प्रवेश करने से पहले दायें हाथ की तरफ 'पंचमेरु' का जिनालय आता है।

(क) पंचमेरु का जिनालय : श्री आदिनाथ भगवान (9 इंच)

इस पंचमेरु जिनालय की रचना अत्यन्त रमणीय है। इसमें चार तरफ के चार कोने में धातकी खंड के दो मेरु ओर पुष्करार्धद्वीप के दो मेरु तथा मध्य में जंबूद्वीप का एक मेरु इस तरह पाँच मेरुपर्वत की स्थापना की गयी है। जिसमें प्रत्येक मेरु पर चतुर्मुखी प्रतिमायें पधरायी गयी हैं। जिनकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1859 में की गयी है ऐसा लेख है।

(ख) अदबदजी का जिनालय : श्री आदिनाथ भगवान (138 इंच)

पंचमेरु के जिनालय से बाहर निकलकर मेरकवशी के मुख्य जिनालय में प्रवेश करने से पहले बायें हाथ पर श्री आदिनाथ भगवान की पद्मासन मुद्रा में बिराजमान महाकायप्रतिमा को देखते ही शत्रुंजय गिरिराज की नव टूंक में विराजमान अदबदजी दादा का स्मरण होने से इस जिनालय को भी अदबदजी का जिनालय कहा जाता है। यह प्रतिमा श्यामवर्ण के पाषाण से बनी है और इस पर श्वेतवर्ण का लेप किया गया है। इस मूर्ति की बैठक में आगे 24 तीर्थंकर परमात्मा की मूर्तिवाला पाषाण वि.सं. 1438 में प्रतिष्ठा के एक लेखयुक्त पीला पाषाण है।

(ग) मेरकवशी का मुख्य जिनालय : सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान

इस जिनालय के मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही छत में विविध कलाकृति युक्त बारीक कारीगरी आश्चर्यकारी लगती है। कारीगरी देखते ही देलवाडा के स्थापत्यों की याद ताजा हो जाती है। इस बावनजिनालय में मूलनायक श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान हैं, जिनकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1859 में प.पू.आ. जिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब ने करवायी। इस बावनजिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में बायीं ओर से घूमने पर पीले पत्थर में वि.सं. 1442 में खुदवाई गई चौबीश तीर्थंकरों की मूर्तियों वाला अष्टापदजी का पट है। आगे मध्य भाग में जो बडी देवकुलिका आती है, उसमें अष्टापदजी का जिनालय बनाया गया है। जिसमें चत्तारी-अठ-दस-दोय इस तरह चार दिशा में क्रमश: 4-8-10-2 प्रतिमाजी पधराकर अष्टापद की रचना की गई है। वहाँ से आगे मूलनायक के ठीक पीछे की देवकुलिका में श्री महावीर स्वामी बिराजमान हैं। वहाँ से उत्तर दिशा की तरफ आगे बढ़ते हुए प्रत्येक देवकुलिका के आगे की चौक की छत में अत्यन्त मनोहर कारीगरी मन को खुशकारक बनती है। आगे उत्तरदिशा की तरफ, मध्य

में स्थित बडी देवकुलिका में श्री शांतिनाथ भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमाजी बिराजमान है। इस जिनालय के मुख्य द्वार से बाहर निकलकर बायीं तरफ मुड़ते ही सगराम सोनी की टूंक में जाने का रास्ता आता है तथा सामने की दीवार के पीछे नया कुंड है।

(3) सगराम सोनी की टूंक : श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान

मेरकवशी की टूंक से बाहर निकलकर उत्तरदिशा के द्वार से सगरामसोनी की टूंक में प्रवेश होता है। इस बावन जिनालय के मुख्य जिनालय में दो मंजिल वाला अत्यन्त मनोहर रंगमंडप है। इस रंगमंडप से मूलनायक के गर्भगृह में प्रवेश करते ही सामने श्री सहस्त्रफणा पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा बिराजमान है जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1859 ज्येठ सुद 7 गुरुवार के दिन आ. जिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब ने करवायी। अन्य जिनालयों के गर्भगृह की ऊँचाई की अपेक्षा इस जिनालय के गर्भगृह की अंदर की ऊँचाई कुछ विशेष है। इस गर्भगृह के छत की ऊँचाई 35 से 40 फुट है। गिरनार महातीर्थ के जिनालयों में इस जिनालय का शिखर सबसे ऊँचा है।

इस जिनालय की प्रदक्षिणा भूमि में उत्तरदिशा की तरफ के द्वार से बाहर निकलते ही कुमारपाल की टूंक में जाने का रास्ता आता है। इस मार्ग की दायीं ओर डाक्टर कुंड तथा गिरधर कुंड आता है।

(4) कुमारपाल की टूंक : श्री अभिनंदन स्वामी भगवान

कुमारपाल की टूंक में प्रवेश करते ही मुख्य जिनालय के चारों ओर बहुत बडा प्रांगण दिखता है। इस प्रांगण से जिनालय में प्रवेश करने पर एक विशाल रंगमंडप आता है जिसमें आगे एक दूसरा रंगमंडप आता है। इस जिनालय के मूलनायक अभिनंदन स्वामी है। इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1875

वैशाख सुद 7 शनिवार के दिन आ. जिनेन्द्रसूरि महाराज साहेब ने करवायी थी। इस जिनालय के उत्तर दिशा की तरफ के प्रांगण में एक देड़की नामक बावड़ी है। खिडकी से बाहर निकलने पर भीमकुंड आता है।

भीमकुंड : *यह कुंड बहुत विशाल है। यह लगभग 70 फुट लंबा और 50 फुट चौडा है। यह कुंड 15 वीं शताब्दी में बना हो, ऐसा लगता है।* सख्त गर्मी में भी इस कुंड का जल शीतल रहता है। इस कुंड की एक दीवार के एक पाषाण में श्री जिनप्रतिमा तथा हाथ जोडकर खड़े हुए श्रावक श्राविकाओं की प्रतिमा खोदी हुई दिखाई देती है। कुंड के किनारे से आगे बढने पर नीचे उतरने के लिए सीढियाँ आती है। बायें हाथ की दीवार के झरोखे में श्री नेमिनाथ भगवान की तथा दायें हाथ के झरोखे में अंबिका देवी की प्रतिमा बिराजमान है। वहाँ से आगे चलने पर श्री चन्द्रप्रभस्वामी का जिनालय आता है।

(5) श्री चन्द्रप्रभस्वामी का जिनालय : श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवान

श्री चन्द्रप्रभस्वामी का यह जिनालय एकांत मे आया है। इस जिनालय में श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवान की प्रतिमा की प्रतिष्ठा वि.सं. 1701 में हुई। उस जिनालय की उत्तरदिशा से 30-35 सीढियाँ नीचे उतरने पर गजपद कुंड आता है।

गजपद कुंड : श्री शत्रुंजय तीर्थ की स्पर्शना करने, श्री रैवतगिरि को नमस्कार करके, गजपद कुंड में स्नान करनेवाले को पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है, ऐसी मान्यता है इस कुंड की। यह गजपद कुंड 'गजेन्द्रपद कुंड' तथा 'हाथी पादुका कुंड' के नाम से भी जाना जाता है। इस कुंड के एक स्तम्भ में जिनप्रतिमा खोदी हुई है। श्री शंत्रुजय माहात्म्य के अनुसार जब श्री भरतचक्रवर्ती और गणधर भगवंत आदि प्रतिष्ठा के लिए गिरनार आये, तब श्री नेमिनाथ प्रासाद की प्रतिष्ठा के लिए इन्द्र महाराज

भी ऐरावत हाथी पर आरुढ़ होकर आए। उस समय प्रभु के स्नानाभिषेक के लिए ऐरावत हाथी के द्वारा भूमि पर एक पाँव से दबाकर कुंड बनाया गया था। इसमें तीनों जगत की विशिष्ट नदियों का जल आया था। उस जल से इन्द्र महाराजा ने प्रभु का अभिषेक किया था। इस जल के पान और स्नान से अनेक रोग नष्ट होते हैं। इस जल से प्रभु का अभिषेक करने से भक्त के कर्ममल दूर होते हैं और मुक्तिपद प्राप्त होता है। इस कुंड में 14 हजार नदियों का प्रवाह देवों के प्रभाव से आता है। इस कुंड के दर्शन करके कुमारपाल टूंक की खिडकी से अंदर प्रवेश कर, श्री नेमिनाथजी की टूंक से बाहर निकलकर पुनः ऊपरकोट के मुख्य द्वार के पास के रास्ते पर आ सकते हैं। इस मुख्य द्वार के सामने 'मनोहरभुवनवाली' धर्मशाला के कमरों के पास से सूरजकुंड होकर श्री 'मानसंग भोजराज' के जिनालय में जा सकते हैं।

(6) मानसंग भोजराज का जिनालय : श्री संभवनाथ भगवान

यह जिनालय कच्छ-मांडवी के वीशा ओसवाल शा. मानसंग भोजराज ने बनवाया था। इसमें मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान की सुंदर प्रतिमा बिराजमान है। इस जिनालय में जाने से पहले मार्ग में आनेवाला सूरजकुंड भी मानसंग ने ही बनवाया था। जूनागढ गाँव में आदिनाथ भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा भी मानसंग ने वि.सं. 1901 में करवायी थी। इस जिनालय के दर्शन करके बाहर निकलकर मुख्यमार्ग पर उत्तरदिशा की तरफ आगे जाने पर दायीं तरफ वस्तुपाल तेजपाल की टूंक आती है।

(7) वस्तुपाल तेजपाल का जिनालय : श्री शामला पार्श्वनाथ भगवान

इस जिनालय में एक साथ परस्पर जुडे हुए तीन जिनालय हैं। ये जिनालय गुर्जर देश के मंत्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल के द्वारा वि.सं. 1232 से 1242 के समय में बनवाये गये थे। जिसमें अभी मूलनायक शामला

पार्श्वनाथ भगवान बिराजमान है। इसकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1306 वैशाख सुद 3 शनिवार के दिन आ. प्रद्युम्नसूरि महाराज साहेब की मुख्य परंपरा में श्री देवसूरि के शिष्य श्री जयानंद महाराज साहेब ने की थी। इस जिनालय के मध्य के मंदिर का रंगमंडप 29.5 फुट चौडा और 53 फुट लंबा है, तथा आसपास के दोनों जिनालय के रंगमंडप 385 फुट समचतुष्ट हैं।

मुख्य जिनालय की बायीं ओर के जिनालय में समचतुष्ठ समवसरण में चतुर्मुखी भगवान बिराजमान है, जिसमें तीन प्रतिमा श्री पार्श्वनाथ भगवान की वि.सं. 1556 के साल के और चौथी प्रतिमा श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवान की वि.सं. 1485 की साल के उल्लेख वाली है। दायीं तरफ के जिनालय में गोलमेरु के ऊपर चतुर्मुखी भगवान बिराजमान हैं जिसमें पश्चिमाभिमुख श्री सुपार्श्वनाथ, उत्तर और पूर्वाभिमुख श्री नेमिनाथ भगवान। ये तीन प्रतिमायें वि.सं. 1543 के साल की हैं। इसमें दक्षिणाभिमुखी श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवान की प्रतिमा बिराजमान है। इस मेरु की रचना पीले रंग के पाषाण से की गयी है।

(8) गुमास्ता का जिनालय : श्री संभवनाथ भगवान (19 इंच)

वस्तुपाल तेजपाल के जिनालय के पीछे के प्रांगण में उनकी माता का जिनालय है। जो गुमास्ता का जिनालय के नाम से प्रसिद्ध है। इस मंदिर के मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान है। कच्छ–मांडवी के गुलाबशाह ने यह जिनालय बनवाया था, इस कारण से यह जिनालय गुलाबशाह मंदिर के नाम से भी पहचाना जाता है। इसे 'वस्तुपाल की माता' का जिनालय भी कहा जाता है।

(9) संप्रतिराजा की टूंक : श्री नेमिनाथ भगवान

वस्तुपाल तेजपाल के जिनालय से बाहर निकल कर उत्तरदिशा की तरफ संप्रतिराजा की टूंक आती है। श्री चन्द्रगुप्तमौर्य के वंश में हुए अशोक

के पौत्र मगधसम्राट संप्रति महाराजा हुए थे। उन्होंने आ. सुहस्तिसूरि महाराज के सदुपदेश से जैन धर्म स्वीकार किया था। वह लगभग वि.सं. 226 के आसपास उज्जैन नगरी में राज्य करते थे। उन्होंने सवालाख जिनालय और सवा करोड जिनप्रतिमायें भरवायी थीं। संप्रतिराजा द्वारा बनवाये गये इस जिनालय में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान बिराजमान है। यह प्रतिमा वि.सं. 1519 में प्रतिष्ठित होने का उल्लेख मिलता है। मूलनायक के गर्भगृह के बाहर के झरोखे में देवी की प्रतिमा है और प्रतिमा के सामने के झरोखे में नेमिनाथ भगवान के शासन अधिष्ठायक देव गोमेध यक्ष की प्रतिमा बिराजमान है। इसके सिवाय रंगमंडप में 54 इंच के खड़े काउस्सग्ग वाली प्रतिमा सहित अन्य 24 नयनम्य प्रतिमायें विराजमान हैं। इस रंगमंडप के बाहर भी बड़ा रंगमंडप बनवाया गया है।

(10) ज्ञानवाव का जिनालय : श्री संभवनाथ भगवान (16 इंच)

संप्रतिराजा के जिनालय के पास उत्तरदिशा की तरफ नीचे उतरते हुए पास में ही दायें हाथ की तरफ के द्वार में प्रवेश करते ही प्रथम मैदान में ज्ञानवाव है। इस चौक में उत्तरदिशा की तरफ के द्वार से अन्दर प्रवेश करते ही चतुर्मुखजी का जिनालय आता है जो श्री संभवनाथ भगवान के नाम से पहचाना जाता है एवं जिसमें मूलनायक श्री संभवनाथ भगवान है। ज्ञानवाव जिनालय के दर्शन करके दक्षिणदिशा की तरफ ऊपर चढकर पुनः संप्रतिराजा के जिनालय के पास से लगभग 50 सीढियाँ चढने पर कोट का दरवाजा आता है। उसमें से बाहर निकलते ही लगभग 50 सीढियाँ चढने पर बायीं तरफ 'शेठ धरमचन्द हेमचन्द' का जिनालय आता है।

(11) शेठ धरमचन्द हेमचन्द का जिनालय : श्री शांतिनाथ भगवान

उपरकोट के दरवाजे से बाहर निकलने के बाद सर्वप्रथम 'शेठ धरमचन्द हेमचन्द' का जिनालय आता है। जिसे 'खाड़ा का जिनालय' भी

कहा जाता है। इस जिनालय में मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान है। मांगरोल गाँव के दस्सा श्रीमाली वणिक शेठ श्री धरमचन्द हेमचन्द द्वारा वि.सं. 1932 में इस जिनालय की मरम्मत व शोभावृद्धि का कार्य करवाया गया।

(12) मल्लवाला जिनालय : श्री शांतिनाथ भगवान (21 इंच)

'शेठ धरमचन्द हेमचन्द' के जिनालय से आगे लगभग 35 से 40 सीढियाँ चढने पर दायीं तरफ 'मल्लवाला जिनालय' आता है। इसमें मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान हैं। इसका उद्धार जोरावरमल्लजी के द्वारा हुआ था, इसलिए यह जिनालय मल्लवाला जिनालय के नाम से पहचाना जाता है।

राजुल गुफा : 'मल्लवाला जिनालय' से दक्षिणदिशा की तरफ थोड़ी सीढियाँ आगे जाते ही पत्थर की एक बडी शिला के नीचे झुककर जाने से वहाँ पर लगभग 1.5 से 2 फुट ऊँचाईवाली राजुल-रहनेमि की मूर्ति स्थापित होने के कारण यह स्थान 'राजुल की गुफा' के नाम से पहचाना जाता है।

(13) चौमुखजी जिनालय : श्री नेमिनाथ भगवान (25 इंच)

चौमुखजी के जिनाल्य में वर्तमान में उत्तराभिमुख मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान, पूर्वाभिमुख श्री सुपार्श्‌वनाथ भगवान, दक्षिणाभिमुख श्री चन्द्रप्रभस्वामी भगवान, और पश्चिमाभिमुख श्री मुनिसुव्रतस्वामी हैं। इनकी प्रतिष्ठा वि.सं. 1511 में आ. जिनहर्षसूरि महाराज साहेब ने करवायी थी। यह जिनालय 'श्री शामला पार्श्वनाथ' के नाम से भी जाना जाता है। पूर्व काल में यहाँ मूलनायक श्री शामला पार्श्वनाथ भगवान होने की संभावना रही होगी। इस जिनालय के अंदर के पबासण के चारों कोने मे समकोण स्तंभ के प्रत्येक स्तंभ में 24-24 प्रतिमायें, इस तरह कुल 96 प्रतिमायें खोदी हुई हैं। ये चार स्तंभ चौरी के समान दिखने के कारण इस जिनालय

को 'चौरीवाला जिनालय' भी कहा जाता है। इस चौमुखजी जिनालय से आगे लगभग 70-80 सीढियाँ चढने पर बायीं तरफ सहसावन श्री नेमिनाथ भगवान की दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणक भूमि की तरफ जाने का मार्ग आता है। और दायीं तरफ 15-20 सीढियाँ चढने पर 'गौमुखीगंगा' नामक स्थान आता है।

(14) रहनेमि का जिनालय : श्री सिद्धात्मा रहनेमिजी (51 इंच)

गौमुखीगंगा के स्थान से लगभग 350 सीढियाँ ऊपर चढने पर दायीं तरफ रहनेमि का जिनालय आता है। इस जिनालय के मूलनायक सिद्धात्मा श्री रहनेमि की श्यामवर्णी प्रतिमा बिराजमान है। अखिल भारत में प्राय: एकमात्र यही जिनालय है जहाँ अरिहंत परमात्मा न होते हुए भी सिद्धात्मा श्री रहनेमि की प्रतिमा मूलनायक के रूप में बिराजमान है। श्री रहनेमि बाईसवें तीर्थकर श्री नेमिनाथ भगवान के छोटे भाई थे। जिन्होंने दीक्षा लेकर गिरनार की पवित्र भूमि में संयमसाधना करके, सहसावन में केवलज्ञान और मोक्षपद प्राप्त किया था।

अंबाजी की टूंक : रहनेमि के जिनालय से आगे लगभग 535 सीढियाँ चढने पर अंबाजी की टूंक आती है। यहाँ अंबिका देवी की प्रतिमा बिराजमान की गई है। इस मंदिर के पीछे श्री नेमिनाथ भगवान की पादुकायें स्थापित की गई हैं।

गोरखनाथ की टूंक : अंबाजी की टूंक से लगभग 100 सीढियाँ उतरकर के पुन: 300 सीढियाँ चढने पर गोरखनाथ की टूंक आती है। इस टूंक पर श्री नेमिनाथ भगवान की वि.सं. 1927 वैशाख सुद 3 शनिवार के लेखवाली पादुका स्थापित की गयी है।

ओघड टूंक (चौथी टूंक) : आगे 800 सीढियाँ उतरकर ओघड टूंक जाने का रास्ता आता है। इस ओघड टूंक पर जाने के लिए कोई

सीढियाँ नहीं है, इस टूंक पर एक बडी शिला पर श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा और दूसरी शिला पर चरण पादुका खोदी गई है।

पाँचवी टूंक (मोक्ष कल्याणक टूंक) : चौथी टूंक से लगभग 390 सीढियाँ ऊपर चढने पर पाँचवी टूंक का शिखर आता है। गिरनार माहात्म्य के अनुसार इस पाँचवी टूंक पर पूर्वाभिमुख परमात्मा की पादुका वि.सं. 1897 के प्रथम आसोज वद 7 गुरुवार को शा. देवचंद लक्ष्मीचंद द्वारा प्रतिष्ठा करवाने का उल्लेख है। इन पादुकाओं के आगे अब अजैनों द्वारा दत्तात्रेय भगवान की प्रतिमा स्थापित करने में आई है। उस मूर्ति के पीछे की दीवार में पश्चिमाभिमुख श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा खोदी हुई है। जिसको हिन्दूधर्मी शंकराचार्य की मूर्ति मानते हैं। अभी ये टूंक दत्तात्रेय के नाम से प्रसिद्ध है। इस टूंक का संचालन हिन्दू महंत के द्वारा किया जाता है। इस टूंक से नीचे उतरकर मुख्य सीढी पर आकर वापिस जाने के रास्ते के बदले बाएं हाथ की तरफ लगभग 350 सीढियाँ उतरते ही 'कमंडकुंड' नामक स्थान आता है।

कमंडकुंड : इस कुंड का संचालन हिन्दू महंत के द्वारा होता है। यहाँ नित्य अग्नि की धूनी प्रगट होती है। कमंडकुंड से नैऋत्य कोने में जंगल के मार्ग से रतनबाग की तरफ जा सकते हैं। यह रास्ता विकट और देवाधिष्ठित स्थान है, जहाँ आश्चर्यकारक वनस्पतियाँ हैं। इस रतनबाग में रतनशिला पर श्री नेमिनाथ प्रभु के देह का अग्निसंस्कार हुआ था। इस कमंडकुंड से अनसूया की छठी टूंक और महाकाली की सातवीं टूंक पर जा सकते हैं। वहाँ से लगभग 1200 सीढियाँ नीचे उतरने पर सहसावन का विस्तार आता है।

(15) सहसावन (सहस्त्राम्रवन) : श्री नेमिनाथ भगवान की दीक्षा-केवलज्ञान भूमि

सहसावन में बालब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ भगवान की दीक्षा और

केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं। सहसावन को 'सहस्त्राम्रवन' भी कहा जाता है, क्योंकि यहाँ हजारों आम के घटादार वृक्ष हैं। यह भूमि नेमिनाथ भगवान के दीक्षा अवसर के वैराग्यरस की सुवास से महकती और कैवल्यलक्ष्मी की प्राप्ति के बाद समवसरण में बैठकर देशना देते हुए प्रभु की पैंतीस अतिशययुक्त वाणी के शब्दों से सदा गूंजती रहती है। इस सहसावन में श्री नेमिनाथ प्रभु की, दीक्षा कल्याणक तथा केवलज्ञान कल्याणक की भूमि के स्थान पर प्राचीन देव कुलिकाओं में प्रभुजी की पादुकायें पधरायी हुई हैं। उसमें केवलज्ञान की देवकुलिका में तो श्री रहनेमिजी तथा साध्वी राजीमतिश्रीजी की यहाँ से मोक्ष में जीने के कारण उनकी पादुकायें भी बिराजमान है। लगभग 40-45 वर्ष पूर्व तपस्वी सम्राट प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज पहली टूंक से इस कल्याणक भूमि की स्पर्शना करने के लिए विकट पगदंडी के मार्ग से आते थे। उस समय कोई भी यात्रिक इस भूमि की स्पर्शना करने का साहस नहीं करता था। इसलिए आचार्य भगंवत के मन में विचार आया कि 'यदि इसी तरह इस कल्याणक भूमि की उपेक्षा होगी तो इस ऐतिहासिक स्थान की सुरक्षा खतरे में पड़ जाएगी'। बस इस समय कोई दिव्यप्रेरणा के बल से महात्मा ने इस भूमि पर दो जिनालयों का निर्माण करने का विचार किया। उनके अथक पुरुषार्थ से सहसावन में जगह प्राप्त कर केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीक के रूप में समवसरण जिनालय का निर्माण हुआ।

(16) समवसरण जिनालय : श्री नेमिनाथ भगवान (35 इंच)

इस समवसरण जिनालय में चतुर्मुखजी के मूलनायक श्यामवर्णी संप्रतिकालीन श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमा बिराजमान है। इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा वि.सं.2040 चैत्र वद पाँचम के दिन प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज, प.पू.आ.नररत्नसूरि महाराज, प.पू.आ.कलापूर्णसूरि महाराज तथा

प.पू. हेमचन्द्र विजय जी गणिवर्य महाराज आदि विशाल साधु-साध्वी समुदाय की पावन निश्रा में हुई थी।

इस समवसरण जिनालय में प्रवेश करते ही सामने समवसरण की सीढियाँ चढकर ऊपर जाते ही मध्य में अशोक वृक्ष के नीचे चतुर्मुखजी प्रभुजी के बिंबों को निहारकर हृदय पुलकित हो जाता है। इस समवसरण के सामने रंगमंडप में अतीत चौबीसी के इस तीर्थकर सहित श्यामवर्णी श्री नेमिनाथ परमात्मा तथा उनके सामने अनागत चौबीसी के चौबीस तीर्थंकर सहित पीतवर्णी श्री पद्मनाभ परमात्मा की नयनरम्य प्रतिमायें बिराजमान हैं। अन्य रंगमंडप में जीवित स्वामी श्री नेमिनाथ भगवान तथा सिद्धात्मा श्री रहनेमि की प्रतिमायें, विशिष्ट कलाकृति युक्त काष्ठ का समवसरण जिनालय तथा प्रत्येक रंगमंडप में श्री नेमिनाथ भगवान के 6-6 गणधर भगंवतों की प्रतिमायें स्थापित की गयी हैं। इसके सिवाय जिनालय में प्रवेश करते ही रंगमंडप में बायीं ओर शासन अधिष्ठायक देव श्री गोमेध यक्ष तथा दायीं ओर श्री अंबिका देवी की प्रतिमायें बिराजमान हैं। अन्य रंगमंडप में प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज के ज्येष्ठ पूज्यों की प्रतिकृति तथा चरण पादुका बिराजमान है।

समवसरण के पीछे नीचे गुफा में श्री नेमिनाथ परमात्मा की अत्यन्त मनोहर प्रतिमा (21 इंच) बिराजमान है। प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब द्वारा प्रेरित 'श्री सहसावन कल्याणकभूमि तीर्थोद्धार समिति' जूनागढ द्वारा समवसरण मंदिर का निर्माण किया गया है। यहाँ यात्री विश्राम, भोजन, भाता, धर्मशाला आदि की पूर्ण व्यवस्था है।

इस समवसरण जिनालय से बाहर निकलकर सीढियाँ उतरते ही दायीं ओर इस जिनालय के प्रेरणादाता प.पू.आ. हिमांशुसूरि महाराज साहेब की अंतिम संस्कार की भूमि आती है। जहाँ आचार्य श्री की प्रतिमा और

चरण पादुका विराजमान है। इस अंतिमसंस्कार भूमि से 60 सीढियाँ उतरते ही दो रास्ते आते है, जिनमें बायीं ओर के मार्ग से 3000 सीढियाँ उतरकर लगभग आधा किलोमीटर चलने पर तलहटी आती है। दायीं ओर 10 सीढियाँ उतरते ही बायीं ओर बुगदा की धर्मशाला आती है जहाँ से 30 सीढियाँ उतरते ही बायीं ओर श्री नेमिनाथ परमात्मा की केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देवकुलिका आती है।

(17) श्री नेमिनाथ परमात्मा की केवलज्ञान कल्याणक की प्राचीन देहरी:

इस केवलज्ञान कल्याणक की देहरी के मध्य में श्री नेमिनाथ प्रभु की चरण पादुका तथा उसके पास उनके शिष्य मुनि श्री रहनेमि तथा साध्वी राजीमतिजी की पादुकायें बिराजमान है। इस देहरी से 30 सीढियाँ उतरते ही बायी ओर श्री नेमिनाथ परमात्मा की दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी आती है।

(18) श्री नेमिनाथ परमात्मा की दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी:

यह दीक्षा कल्याणक की प्राचीन देहरी एक विशाल चौक में स्थित है। इसमें श्री नेमिनाथ प्रभु की श्यामवर्णी चरण पादुका है। अनेक मुमुक्षु आत्मायें दीक्षा लेने के पूर्व इस पावन भूमि की स्पर्शना करने अवश्य आते हैं। इस दीक्षा कल्याणक भूमि के सामने वाल्मिकी गुफा तथा बायें हाथ से नीचे उतरते ही भरतवन, गिरनार गुफा, हनुमानधारादि हिन्दू स्थान आते हैं। वहाँ से नीचे उतरते ही परिक्रमा के रास्ते में आनेवाला 'झीणाबावा की मढी' के स्थान पर पहुँचा जा सकता है।

इस दीक्षा कल्याणक की देहरी से दायीं ओर वापिस 70 सीढियाँ ऊपर चढते ही दायीं ओर तलहटी की तरफ जाने का मार्ग आता है। जिस मार्ग पर लगभग 1800 सीढियाँ उतरते ही रायण वृक्ष के नीचे एक प्याऊ

आती है जहाँ उबले हुए पानी की व्यवस्था भी उपलब्ध है। वहाँ से 1200 सीढियाँ उतरकर लगभग आधा किलोमीटर चलकर जाने पर गिरनार की तलहटी आती है।

सहस्त्राम्रवन में श्री नेमिनाथ प्रभु के केवलज्ञान और दीक्षा कल्याणक के अलावा भी अन्य ऐतिहासिक प्रसंग हुए है।

* सहसावन में करोडों देवताओं के द्वारा श्री नेमिनाथ भगवन का प्रथम तथा अंतिम समवसरण रचाया गया था।
* सहसावन में साध्वी राजीमतीजी तथा श्री रहनेमि ने मोक्ष पद प्राप्त किया था।
* सहसावन में श्री कृष्णवासुदेव के द्वारा सुवर्ण और रत्नमय प्रतिमाजी युक्त तीन जिनालयों का निर्माण कराया गया था।
* सहसावन में सोने के चैत्य में मनोहर चौबीशी का निर्माण करवाया गया था।
* सहसावन के पास लक्षाराम में एक गुफा में तीनों काल की चौबीसी के बहोत्तर तीर्थंकर भगवान की प्रतिमायें बिराजमान की गयी हैं।

श्री गिरनार महातीर्थ की 99 यात्रा की विधि

श्री गिरनार महातीर्थ भूतकाल में अनंत तीर्थंकरों के कल्याणक, वर्तमान चौबीसी के बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ परमात्मा की दीक्षा-केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक और आनेवाली चौबीसी के 24 तीर्थंकरों के मोक्ष कल्याणक यहाँ होने से पावन भूमि बनी हुई है। इस महातीर्थ की 99 यात्रा की विधि के लिए शास्त्रों में कोई विशेष उल्लेख नहीं आता है। परन्तु पश्चिमि भारत में तीर्थंकर के मात्र ये तीन कल्याणक ही होने के कारण इस महाकल्याणकारी भूमि के दर्शन पूजन और स्पर्शना द्वारा अनेक भव्यात्मा आत्मकल्याण की आराधना में विशेष वेग ला सके उसके लिए पुष्ट आलंबन स्वरुप गिरनार गिरिवर की 99 यात्राओं का आयोजन किया जाता है।

गिरनार के पाँच चैत्यवंदन तथा 99 यात्रा

(1) जय तलहटी में आदिनाथ भगवान के जिनालय में।

(2) जय तलहटी में नेमिनाथ परमात्मा की चरण पादुका के सामने।

(3) फिर यात्रा करके नेमिनाथ दादा की प्रथम टूंक में मूल नायक।

(4) मुख्य देरासर के पीछे आदिनाथ के मंदिर में।

(5) अमिझरा पार्श्वनाथ का चैत्यवंदन करना अथवा नेमिनाथ परमात्मा की चरण पादुका के सामने। वहाँ से सहसावन (दीक्षा-केवलज्ञान कल्याणक), अथवा जय तलहटी आने पर प्रथम यात्रा पूर्ण हुई

कहलाती है। फिर वापिस जय तलहटी से अथवा सहसावन से ऊपर चढते समय पूर्वानुसार दो चैत्यवंदन करना। इस तरह दोनों में से किसी भी स्थान से पुनः दादा की टूँक के दर्शन चैत्यवंदन करके इन दोनों में से किसी भी स्थान से नीचे उतरने पर दूसरी यात्रा गिनी जाएगी। क्रमशः इसके अनुसार 108 दादा की टूंक की स्पर्शना करनी आवश्यक है।

शङ्खेश्वर तीर्थ

ॐ ह्रीं अर्हं श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नम :

मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान

तीर्थ का ऐतिहासिक वर्णन

शंखेश्वर एक अति प्राचीन तीर्थ है। यह गुजरात के महसाणा जिले में स्थित है। महसाणा से ६० किलोमीटर की दूरी पर शंखेश्वर नामक स्थान है। भगवान श्री पार्श्वनाथ की सबसे प्राचीनतम प्रतिमा शंखेश्वर में है। शंखेश्वर पार्श्वनाथ की प्रतिमा को करोड़ों देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजा गया तथा उन्हें इच्छित सिद्धियाँ एवं फल प्राप्त हुए। श्वेतवर्ण की यह महामनोहर प्रतिमाजी सभी प्रतिमाओं में प्राचीन जिनबिंब है। कलात्मक परिकर से जिनबिंब की मोहकता आँखों से प्रभुदर्शन से हटने नहीं देती है। इस मूर्ति पर सात मनोहर फण अलंकृत हैं जो मूर्ति को लावण्यमयी बनाते हैं। प्रतिमा का अनुपम रूप हृदय में भक्ति की लहरें उत्पन्न करता है। ७१ इंच की विराटकाय प्रतिमाजी का दर्शन विकारों को दूर करता हैं। अंतर में प्रकाश फैलाता है। पद्मासन में विराजित पार्श्वप्रभु के दर्शन कर भक्त का चित्त प्रसन्न हो जाता है।

प्राचीन ऐतिहासिक संदर्भों के अनुसार पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा करोड़ों वर्ष पुरानी है। गत चौवीसी के नवें तीर्थंकर श्री दामोदर स्वामी की देशना के समय आषाढी नामके श्रावक ने स्वामी से पूछा- हे भगवन! मेरी मुक्ति कैसे होगी? क्या तीर्थंकर परमात्मा के काल में मुझे मुक्ति प्राप्त होगी? तब दामोदर स्वामी ने कहा- हे आषाढ़ी श्रावक! तेरी मुक्ति आवती (अनागत) चौवीसी के तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ की आराधना करने से होगी। उस समय तुम आर्यघोष नामक गणधर बनकर मुक्ति प्राप्त करोगे। अतः अभी बहुत समय है। किन्तु, श्रावक के हृदय ने

पार्श्व प्रभु की आराधना करने की ठान ली। हृदय की अनुभूति से पार्श्वप्रभु के दर्शन हुये। तब श्रावक ने पूछा- स्वामी! मुझे जिस तीर्थंकर की आराधना करनी है, क्यों नहीं उनकी प्रतिमा मैं आज ही तैयार कर आराधना प्रारम्भ कर दूँ। उस समय दामोदर स्वामी ने अपने श्रावक को सहज स्वीकृति दी और आषाढ़ी श्रावक ने सफेद मोतियों के चूर्ण से भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा तैयार की और आराधना प्रारम्भ कर दी। वर्षों आराधना करने के बाद आषाढ़ीभूत श्रावक का काल पूरा होने पर प्रतिमा-शुद्ध चारित्र का पालन करने वाला श्रावक सौधर्म देवलोक के देवी वैभव का स्वामी बना। प्रथम देवलोक के देवों को अवधिज्ञान से स्वनिर्मित इस प्रतिमा के दर्शन हुये और वहाँ इस प्रतिमा को स्थापित कर पूजा सेवा की। इसके बाद सौधर्मेन्दे ने पूजा की।

ज्योतिष देवलोक के सूर्यदेव को सौधर्मेन्द्र ने प्रतिमा अर्पित की। सूर्यदेव ने सुंदर मुख की प्रतिमा का अद्भुत प्रभाव प्राप्त किया। भक्तिपूर्वक सूर्यदेव ने ५४ लाख वर्ष तक इस प्रतिमा की पूजा की। देवों द्वारा पूजित यह प्रतिमा निरंतर प्रभावशाली होती गयी। सूर्य के विमान में से यह अलौकिक जिनप्रतिमा चंद्रमा के आवास में आयी वहाँ भी ५४ लाख वर्ष तक पूजित होती रही। मृत्युलोक के एक मानव के हृदय में इस प्रतिमापूजन की उमंग जागृत हुई तब देवों द्वारा इस आकर्षक प्रतिमा को वहाँ भी स्थापित किया गया। पहले देवलोक, सौधर्म देवलोक, ईशान देवलोक में देवताओं द्वारा पूजित होती रही। दसवें प्राणत देवलोक में पूजित हुई। इस तरह इस प्रतिमा को सूर्य, चन्द्र व अन्य देवी-देवताओं व श्रावकों द्वारा पूजा गया। कालक्रम से यह प्रतिमा लवणसमुद्र में वरुणदेव, नागकुमार आदि देवों के आवास में अलंकृत हो पूजित होती रही। तत्पश्चात् गंग, यमुना नगरों में व अनेक स्थानों पर देवताओं द्वारा पूजी गयी। इस मूर्ति की पूजा का यशस्वी इतिहास है। इसी कारण प्रतिमा तेजस्वी होती गयी।

अपूर्ण अपूर्व प्रभावयुक्त बनती गयी। आदिनाथ भगवान के शासनकाल में नमि, विनमि नामक विद्याधरों द्वारा वैताढ्य पर्वत पर पूजित हुई। नागराज धरणेन्द्र द्वारा मूर्ति का प्रभाव जाना गया।

आठवीं तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभस्वामी के समवसरण में सौधर्मेन्द्र मुक्ति के लिए पूछते हैं। तब तीर्थंकर भगवान तेवीसवें तीर्थंकर पार्श्वप्रभु के काल में मुक्ति की बात कहते हैं। किन्तु पार्श्व प्रभु की भक्ति करने की इच्छा सौधर्मेन्द्र के हृदय में प्रकट होती है। प्रबल इच्छा के परिणाम स्वरूप विमान में प्रतिमा इन्द्र व इन्द्राणियाँ लाते हैं और भक्ति से पूजा करते हैं।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के समय में सौधर्म देवलोक के इन्द्र द्वारा प्रतिमा की पूजा होती है। जब रामचन्द्रजी दंडकारण से वनवास जाते हैं तब सौधर्मेन्द्र इन्द्र द्वारा रथ में यह प्रतिमा पधराते हैं। राम-सीता द्वारा वनवास के दरम्यान पूजा की गयी। तत्पश्चात् प्रतिमा सौधर्मेन्द्र द्वारा पूजित हुयी।

गिरनार गिरि के शृंग पर कंचन बालानक नाम की टूंक पर प्रतिमा को लाये तथा वहाँ नागकुमारदेवों द्वारा पूजा की गयी। नागराज धरणेन्द्र एक ज्ञानी महात्मा से प्रतिमा का रहस्य जानते हैं। भक्ति से ओतप्रोत हो धरणेन्द्र पद्मावती द्वारा पूजा की गयी। इस तरह प्रतिमा स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न भक्तों द्वारा पूजित होती रही है। अन्त में शंखेश्वर तीर्थ में यह प्रतिमाजी स्थापित हुए।

श्री शंखेश्वर तीर्थ की स्थापना

पूर्वकाल में नौवाँ प्रतिवासुदेव जरासंघ राजगृह नगर से समस्त सेना के साथ नौवें वासुदेव कृष्ण से युद्ध करने के लिए पश्चिम दिशा की ओर चला। कृष्ण भी समस्त सैन्य सामग्री सहित द्वारिका से निकल कर उसके सन्मुख देश-सीमा पर आये। जहाँ भगवान अरिष्टनेमि ने पाञ्चजन्य-शंख बजाया, वहाँ शंखेश्वर नगर बसा। शंख के निनाद से क्षुब्ध जरासन्ध ने जरा नामक कुलदेवी की आराधना कर कृष्ण की सेना में जरा की विकुर्वणा की, जिससे श्वास-कास रोग से अपनी सेना को पीड़ित देखकर *व्याकुल होकर श्रीकृष्ण ने भगवान अरिष्टनेमि से कहा- भगवान्! मेरी सेना* कैसे निरुपद्रव होगी? और मुझे कब जयश्री हस्तगत होगी? तब भगवान ने अवधिज्ञान का उपयोग कर कहा- "पाताल में नागराज से पूज्यमान भावी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा है, उसे यदि तुम अपनी देव-पूजा के समय पूजो तो सेना निरुपद्रव होगी और तुम्हारी जीत भी होगी। यह सुनकर श्रीकृष्ण ने सात महीना तीन दिन में और मतान्तर में तीन दिन निराहार रहकर पन्नगाधिराज की आराधना की, क्रमशः नागराज वासुकि प्रत्यक्ष हुआ। तब कृष्ण ने भक्ति-बहुमानपूर्वक पार्श्वनाथ प्रतिमा की याचना की। नागराज ने उसे अर्पण की। फिर महोत्सवपूर्वक लाकर अपनी देव-पूजा में स्थापित कर त्रिकाल पूजा प्रारम्भ की। उसके न्हवण जल को समस्त सेना पर छींटने से जरा-रोग-शोक-विघ्न निवृत्त होकर श्रीकृष्ण की सेना में समर्थता आ गई। क्रमशः जरासन्ध की पराजय हुई। लोहासुर, गजासुर, वाणासुर आदि सभी जीत लिए गए।

धरणेन्द्र-पद्मावती के सान्निध्य से वह प्रतिमा सकल विघ्नापहारिणी, सकल ऋद्धि-जननी हुई। वह वहीं शंखपुर में स्थापित की गई। कालान्तर में प्रच्छन्न होकर क्रमशः शंखकूप में प्रगट हुई। आज पर्यन्त चैत्यगृह में सकल संघ द्वारा वह पूजी जाती है। अनेक प्रकार के परचे-चमत्कार पूरे जाते हैं। तुर्क राजा लोग भी वहाँ महिमा करते हैं। ८६५०० वर्ष से यह प्रतिमा इसी ग्राम में है। यहाँ इसके जीर्णोद्धार समय-समय पर होते गये हैं। कामित तीर्थ शंखेश्वर स्थित पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमा का यह विवरण शंखेश्वराधीश्वर पार्श्वनाथदेव कल्याणकल्पद्रुम से लिया गया है।

जीर्णोद्धार

शंखपुर श्वेताम्बर जैनों का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। शंखेश्वर पार्श्वनाथ के बारे में जिनप्रभसूरि ने जो विवरण प्रस्तुत किया है, वैसा ही विवरण उपकेशगच्छीय कक्कसूरि द्वारा रचित **नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध** में भी प्राप्त होती है। पश्चात्कालीन अन्य ग्रन्थों में भी यही बात कही गयी है।

शीलाङ्काचार्यकृत **चउपन्नमहापुरुषचरियं**, मलधारगच्छीय हेमचन्द्रसूरि द्वारा रचित **नेमिनाहचरिय**, कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यकृत **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**, मलधारगच्छीय देवप्रभसूरिकृत **पांडवचरितमहाकाव्य** आदि ग्रन्थों में भी उक्त कथानक प्राप्त होता है, परन्तु वहाँ शंखपुर नहीं अपितु आनन्दपुर नामक नगरी के बसाने का उल्लेख है। जिनप्रभसूरि के उक्त कथानक का आधारभूत ग्रन्थ कौनसा है? वे स्वयं इसे गीत के आधार पर उल्लिखित बतलाते हैं-

''संखपुर ट्ठिमुत्ती कामियातित्थं जिणेसरो पासो।

तस्सेस मए कप्पो लिहिओ गीयाणुसारेण।।''

कल्पप्रदीप अपरनाम विविधतीर्थकल्प-पृ. ५२

यह गीत कौनसा था? उसके रचनाकार का समय क्या था? यह ज्ञात नहीं। शंखेश्वर महातीर्थ को मुंजपुर से दक्षिण-पश्चिम में सात मील दूर राधनपुर के अन्तर्गत स्थित शंखेश्वर नामक ग्राम से समीकृत किया जाता है। ग्राम के मध्य में भगवान् पार्श्वनाथ का ईटों से निमित एक प्राचीन

जिनालय है, जो अब खण्डहर के रूप में विद्यमान है। इसी के निकट एक नवीन जिनालय का भी निर्माण कराया गया है।

जयसिंह सिद्धाराज के मंत्री दण्डनायक सज्जन को यहाँ स्थित पार्श्वनाथ चैत्यालय के जीर्णोद्धार कराने का श्रेय दिया जाता है। यह कार्य वि.सं. ११५५ के लगभग सम्पन्न हुआ माना जाता है। यद्यपि समकालीन ग्रंथों में इस बात की कहीं चर्चा नहीं मिलती, परन्तु पश्चात्कालीन ग्रन्थों से यह बात ज्ञात होती है। वि.सं. ११५० से ११९९ पर्यन्त गुजरात में सोलंकी वंश के नरेशों का आधिपत्य रहा। वस्तुपाल-तेजपाल ने भी यहाँ स्थित चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराया एवं चैत्यशिखर पर स्वर्णकलश लगवाया। कुछ विद्वानों के अनुसार यह कार्य वि.सं. १२८६ के लगभग श्री वर्द्धमान सुरीश्वरजी के उपदेश से सम्पन्न हुआ, परन्तु यथेष्ठ प्रमाणों के अभाव में उक्त तिथि को स्वीकार नहीं किया जा सकता। गुजरात के तत्कालीन महामंत्री श्री वस्तुपाल तेजपाल ने *श्री शंखेश्वरजी में मन्दिर का* जीर्णोद्धार करवाकर प्रत्येक देहरी पर स्वर्ण कलश चढ़ाये। अपूर्व उत्साह से प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न करवाया, जिसमें २ लक्ष स्वर्ण मुद्राओं का सदुपयोग किया गया।

संघ के साथ यात्रा करते हुए वस्तुपाल-तेजपाल ने जिनालय के ५२ कुलिकाओं को स्वर्ण निर्मित कलशों से वर्णित किया। थोड़े वर्ष बाद ही दुर्जन व्यक्ति महामण्डलेश्वर द्वारा इस तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया। १७वीं सदी में जगद्गुरु पूज्य हीरविजयसूरि के पट्टधर श्री विजयसेनसूरिजी महाराज के उपदेश से शंखेश्वर गाँव के मध्य ५२ देवकुलिकाओं के परिव्रत भव्य जिनालयों का निर्माण करवाया और सूरिजी के वरद हस्त से प्रतिष्ठा करवाई। १८वीं सदी में औरंगजेब के समय मंदिर के रक्षा हेतु देवों द्वारा हुई मूलनायक प्रतिमा को जरा भी क्षति नहीं पहुँची। मुगलकाल में

प्रतिमाओं को गुप्त रखा गया। फिर उदयरत्नसूरिजी महाराज चतुर्विध संघ के साथ शंखेश्वर पधारे। उस समय ठाकुर के पास रखी प्रतिमा दर्शन हेतु देखनी चाहिए। किन्तु ठाकुर द्वारा मना कर दिया गया। तब उन्होंने अन्न-जल त्याग कर दिया। मुनि द्वारा त्याग के पश्चात् प्रतिमा के दर्शन करवाये व पुनः प्रतिष्ठा करवायी तब म.सा. ने आहार-पानी ग्रहण किया। भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हुए-

पास शंखेश्वरा सार करे सेवका,
देवकां? एवडी वार लागे,
कोटि कर जोडी दरबार आगे बढा
ठाकुरां चाकुरां मान मांगे।

प्रार्थना पूर्ण होते-होते चमत्कार हुआ। चारों तरफ प्रकाश फैल गया। लोगों की आँखें थोड़ी देर के लिए चौंधिया गयीं। सब ने प्रभु की प्रतिमा का दर्शन किया। सभी बहुत प्रभावित हुए। विजयप्रभसूरिजी के उपदेश से तीर्थ पर जीर्णोद्धार हुआ।

वर्तमान झिंझूवाडा के राजा को कोढ हुआ था तब इस बीमारी से मुक्ति हेतु राजा द्वारा वहाँ के सूर्य मंदिर में सूर्य भगवान की आराधना की जिससे सूर्य भगवान ने प्रसन्न हो राजा को स्वप्न में प्रकट होकर कहा कि तुम्हारा रोग असाध्य है अतः तुम शंखेश्वर पार्श्व की आराधना करो। राजा शंखेश्वर सादर हृदय से आराधना करता है तभी रोगमुक्त हो जाता है। तब दुर्जनशाल ने भी उक्त पार्श्वनाथ चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराया। यह बात जगडूचरितमहाकाव्य से ज्ञात होती है। चौदहवीं शती के अन्तिम दशक में अलाउद्दीनखिलजी ने इस तीर्थ को नष्टप्राय कर दिया था। इसी का एक और वृत्तान्त प्राप्त होता है:- पूर्णिमागच्छ के आचार्य श्री परमदेवसूरीजी श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवन्त के आराधक थे। उन्होंने श्री वर्द्धमान आयम्बिल तप की १०० ओली पूर्ण की थी एवं श्री संघ में विघ्न

करने वाले सात यक्षों को श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ प्रभु के मन्दिर में प्रतिबोधित किया था। राजा दुर्जनशल्य भी आचार्यदेव के परिचय में आया एवं उनसे अपने कोढ़ रोग के निवारण का उपचार पूछा। आचार्यश्री ने श्री पार्श्वनाथ भगवन्त की आराधना द्वारा राजा का कोढ़ दूर करवाया एवं राजा को प्रेरित कर मन्दिर का पूर्ण जीर्णोद्धार करवाया।

१४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध जबकि मुसलमान सुलतानों के सैन्य दल गुजरात की पावन भूमि पर छा गये थे। सोमनाथ की ऐतिहासिक लूट के पश्चात् उन्होंने घूम-घूमकर जैन व जैनेतर मन्दिरों का पूर्णतः विध्वंस कर दिया। इन्हीं के आक्रमण से श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ का भव्य मन्दिर भी ध्वंस हो गया। किन्तु उस समय दीर्घ दृष्टिवान संघ-प्रमुखों ने प्रभु की पावन प्रतिमा को जमीन में अदृश्य कर दिया था। ध्वस्त हुए जिन मन्दिर के अवशेष संभवत वर्तमान शंखेश्वरजी से आधा मील दूर चन्दूर के रास्ते में बिखरे पड़े हैं।

श्री सेन सूरीश्वरजी महाराज शंखेश्वरजी पधारे तब एक दन्तकथा उनके श्रवण करने में आई कि एक गाय सदैव एक खड्डे के समीप होकर जंगल में घास चरने जाती। परन्तु उस खड्ढे के निकट आते ही उसका सारा दूध स्वयमेव ही नीचे झर जाता। गाय के मालिक को चिन्ता हुई अतः उसने गाय का पीछा किया। खड्डे के निकट गाय का दूध झरता देख उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ! उसने सोचा 'इस स्थान पर अवश्य कोई न कोई चमत्कारिक तत्त्व छिपा हुआ होना चाहिये।' अतः उसने खड्डे की खुदाई की। फलस्वरूप उस खड्डे में से भगवान पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई। इस समाचार को सुनकर ग्राम निवासी अत्यन्त हर्षित हुए। एवं इन्हीं समाचारों को सुनकर श्री सेन सूरीश्वर महाराज भी शंखेश्वरजी पधारे। नूतन, भव्य, बावन, जिनालय युक्त शिखरबन्दी, देरासर का निर्माण हुआ एवं उन्हीं आचार्यश्री के वरद् हस्तों द्वारा प्रभु प्रतिमा की पुनः प्रतिष्ठा हुई।

शंखेश्वर के निकट ही मुजपुर नाम का एक ग्राम, मुजपुर के ठाकुर थे, श्री हमीरसिंहजी जिनकी धाक समस्त वढ़ियार प्रान्त में जमी हुई थी। अतः गुजरात का मुसलमान सूबेदार उन्हें अपना कट्टर शत्रु समझता था। एक बार अवसर देख अकस्मात् ही सूबेदार ने हमीरसिंह पर आक्रमण कर दिया। अप्रत्याशित आक्रमण में वीर हमीर सिंह का निधन हो गया। मुसलमानी सेना द्वारा मुजपुर का सारा क्षेत्र लूट लिया गया। अहमदाबाद की ओर वापिस लौटती सेना ने शंखेश्वरजी के मन्दिर को भूमिसात् कर दिया, परन्तु उस सेना के वहाँ पहुँचने से पूर्व ही अगम बुद्धि श्रावकों ने श्री पार्श्वनाथ भगवन्त की प्रतिमा को भूमितल में छिपा दिया था। अतः मुसलमानों द्वारा मूर्ति भंग नहीं हो सकी। आज भी ध्वस्त देरासर के खण्डहर शंखेश्वर तीर्थ के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर बिखरे हुए हैं और उन्हें सुरक्षित रखा गया है। यदि कोई यात्री देखना चाहे तो चौकीदार उन अवशेषों को दिखाता है। प्रत्येक देहरी पर वि.सं. १६५२ से १६९८ तक के शिलालेख अंकित हैं।

अनुमान यह है कि श्री सेन सूरीश्वरजी महाराज के पट्टधर श्री विजयदेवसूरीश्वरजी के पट्टालंकार श्री विजयप्रभसूरिजी महाराज के उपदेश से तत्कालीन श्री संघ ने मूल गम्भरा तथा गूढ़मण्डप का निर्माण करवाकर भगवन्त श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ को प्रतिष्ठापित किया जिसका कि अनुमानित समय वि.सं. १७६० के लगभग होना सम्भव है।

आज यहाँ ग्राम में ईंटों से निर्मित जो ध्वस्त जिनालय विद्यमान है वह अकबर द्वारा गुजरात विजय के तुरन्त बाद बनवाया गया, क्योंकि उस समय तक जैनों ने सम्राट् का विश्वास प्राप्त कर लिया था और वे अहमदशाही बन्धनों से भी पूर्णतया मुक्त हो चुके थे, इसी से उत्साहित होकर उन्होंने यह निर्माण कार्य कराया। इस जिनालय को राज्य की ओर से दान एवं शाही फरमान भी प्राप्त हुआ।

इस जिनालय में वि.सं. १६५२ से १६९८ तक के लेख प्राप्त हुए हैं, जो ध्वस्त देहरीओं, उनके बारशाखों आदि पर उत्कीर्ण है। इनकी कुल संख्या ३५ हैं, जिसमें से २८ लेखों में कालनिर्देश है, शेष लेख मितिविहीन हैं।

यहाँ स्थित नवीन जिनालय के मुख्यद्वार के बाहर बाँयीं ओर वि.सं. १८६८ भाद्रपद सुदी १० बुधवार का एक लेख उत्कीर्ण है। बर्जेस ने इस लेख के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि यह जिनालय उक्त तिथि में निर्मित हुआ है। परन्तु उनका यह मत भ्रामक है। वस्तुतः इस लेख में उक्त जिनालय को दिये गये दान एवं उसके व्यय के प्रबन्ध सम्बन्धी विवरण है। मुनि जयन्तविजय का यह मत उचित ही प्रतीत होता है कि इस जिनालय के निर्माता, प्रतिष्ठापक आचार्य, प्रतिष्ठा तिथी आदि के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

नवीन जिनालय में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं, परिकरों, देहरीओं आदि पर वि.सं. १२१४ से वि.सं. १९१६ तक के लेख उत्कीर्ण है। इनमें से २१ लेखों में कालनिर्देश है, शेष ३ लेख मितिविहीन है।

जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ वर्तमान के सबसे अधिक स्मरणीय तीर्थंकर हैं। भगवान पार्श्वनाथ के सबसे अधिक तीर्थ हैं, सबसे अधिक जिनालय हैं। भगवान पार्श्वनाथ का नाम स्मरण करते ही विद्युत स्पर्श की भांति तुरंत चमत्कारी प्रभाव महसूस होता है। शास्त्रों में भगवान पार्श्वनाथ के जीवन में जो गुण दिखाई देते हैं वैसे तो वे सब तीर्थंकर भगवान में हैं; परंतु प्रभु पार्श्वनाथ में दूसरों के दुःख को देखकर द्रवित होने की दयालुता और उनका उद्धार करने की भावना व आत्मीयता है।

शास्त्रों में वर्णन के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ ने अपने युग में 216 ऐसी वृद्ध कुमारिकाएं, जो बिना विवाह किए ही वृद्ध हो गईं, जो समाज में उपेक्षित व अपमान की पीड़ा से दुःखी थीं, उनको तप-संयम के श्रेष्ठ साधना मार्ग में प्रवृत्त कर अतीव सन्मान योग्य स्थान प्रदान किया, यह उन

पर एक अवर्णनीय उपकार ही था। वृद्ध कुमारिकाएं आयुष्य पूर्ण कर विविध व्यंतरनिकाय के इंद्रों की इंद्राणियां बनीं। 'एक उपेक्षित नारी का जीवन से मुक्ति पाकर इंद्राणी पद पाना' इस महान् उपकार का स्मरण कर वे पूर्वभव के परम उपकारी प्रभु पार्श्वनाथ के उपकार की महिमा का विस्तार करने से स्वयं को कृतकृत्य समझने लगी हों यह कोई असम्भव बात नहीं है। क्योंकि शिष्य, गुरु के उपकारों का सदैव ऋणी रहता है और गुरु की महिमा ही बढ़ाता है। इनके अलावा संतान प्रदात्री बहुपत्रिका देवी तथा सूर्य-चंद्र तथा शुक्र महाग्रह भी पूर्व भव में भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य थे। ये सभी देव वर्तमान अवसर्पिणी काल में विद्यमान हैं और अपने परमोपकारी धर्म-गुरु-भगवंत का नाम स्मरण जप-ध्यान करने वाले भक्तों की सहायता करें, उनके मनोरथ पूर्ण करें, इसमें आश्चर्य नहीं अपितु बहुत स्वाभाविक लगता है। यह उपकारी के उपकारों से ऋण-मुक्ति का एक सहज प्रयत्न मात्र समझना चाहिए।

इसी के साथ नागकुमारों के इंद्र धरणेन्द्र और इंद्राणी पद्मावती देवी का आज प्रभु पार्श्वनाथ की महिमा के विस्तार तथा भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने में विशिष्ट योगदान है। राजकुमार पार्श्वनाथ तापस कमठ की धूनी में एक नाग (कुछ आचार्यों ने केवल एक नाग माना है जबकि कुछ आचार्यों ने नाग-नागिन का जोड़ा माना है) को जलते देखकर नि:स्वार्थ करुणाभाव से द्रवित हो उठे और उसे तुरंत जलती अग्नि से बाहर निकलवाकर नामोकार मंत्र सुनाया। नाग की क्रोध-राग से उत्तेजित भावनाएं शांत हुईं। करुणामूर्ति पार्श्वनाथ के सान्निध्य से उसका क्रोध भक्तिभाव में बदल गया। रोष श्रद्धा में परिणित हो गया। अपार पीड़ा में भी शान्ति का अनुभव किया। रोष वश दुर्गति में जाने के स्थान पर भक्तिभाव से पवित्र हो सद्गति में और वह भी नागकुमारों का इंद्र (धरणेंद्र) बना, यह कितना महान् उपकार है। एक सामान्य नाग को नागेन्द्र बनाने वाले महाउपकारी भगवान पार्श्वनाथ ही थे।

धरणेंद्र-पद्मावती ने पहले असुर मेघमाली के उपसर्गों से प्रभु के शरीर की रक्षा कर अपनी उत्कृष्ट भक्ति का परिचय दिया और पश्चात् प्रभु भक्तों के उपसर्ग निवारण में प्रमुख सहायिका बनीं। यह आज प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध बात है। इसी कारण आज कलयुग में जहां प्रभु पार्श्वनाथ नाम स्मरण, कीर्तन सर्वाधिक चमत्कारी तथा शीघ्र फलदायी माना जाता है। वहीं उनकी शासन रक्षिका देवी माता पद्मावती भी भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने वाली प्रत्यक्ष चमत्कारी महादेवी मानी जाती है।

वर्तमान में सबसे अधिक अधिष्ठायक देवी-देवता प्रभु पार्श्व के ही हैं, श्री धरणेन्द्र-पद्मावती, श्री नाकोड़ा भैरव देव, शिखरजी के भोमिया बाबा, यक्ष देव, नाग-नागिन आदि कई समकित देव प्रभु भक्ति में लीन रहते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि प्रभु पार्श्व की भक्ति वो नैया है जो उन्हें पार लगा कर रहेगी।

भगवान के हजारों तीर्थ हैं परंतु 108 तीर्थ अति प्रसिद्ध हैं जहाँ पर चमत्कार होते हैं। जहां हर समय लोग भक्ति-पूजा में लगे रहते हैं। ऐसे तीर्थ का नाम स्मरण ही अपने आप में पुण्य है। कहते हैं भगवान पार्श्व ने पूर्व जन्मों में पूर्व के तीर्थंकर भगवंतों के पंचकल्याणक अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से मनाए। इस कारण प्रभु ने ऐसे पुण्य कर्म का बंधन किया कि इस युग में उन्हें 23वें तीर्थंकर होते हुए भी सबसे ज्यादा स्मरण किया जाता है। ऐसा भी गुरु भगवंत फरमाते हैं कि कण-कण में पार्श्वप्रभु हैं। जो जहाँ श्रद्धा से ध्यान लगायेगा उसे वहीं साक्षात् दर्शन होंगे। हाल ही में बना राजस्थान राज्य के भीनमाल का लक्ष्मीवल्लभ पार्श्वनाथ का तीर्थ कुछ ऐसे ही चमत्कार का परिणाम रहा है।

भगवान पार्श्वनाथ का जीवन परिचय

१. काल विचार

पार्श्वनाथ का जन्म ईसापूर्व ८७७ में और निर्वाण ईसापूर्व ७७७ में हुआ था। तिलोयपण्णत्ति नामक ग्रन्थ के चतुर्थ अधिकार में लिखा है कि पार्श्वनाथ भगवान् महावीर के २७८ वर्ष पहले हुए थे।

२. जन्म स्थान तथा माता-पिता

तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में राजा अश्वसेन के यहाँ ब्रह्मा देवी के गर्भ से हुआ था। तिलोयपणत्ति के अनुसार पार्श्वनाथ के पिता का नाम हयसेन और माता का नाम वर्मिला था। उत्तरपुराण के अनुसार पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्रह्मा देवी था। वादिराजसूरि कृत पार्श्वनाथ चरित के अनुसार पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्रह्मदत्ता था। तथा समवायांग नामक आगम ग्रन्थ में पिता का नाम अश्वसेन और माता का नाम वामादेवी बतलाया गया है। देवभद्रसूरि के 'पार्श्वनाथ चरित्र' और 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' में अश्वसेन भूप को इक्ष्वाकु वंशी माना है।

पार्श्वनाथ की आयु १०० वर्ष की थी और वे कुमार अवस्था में ही प्रवृजित हो गये थे। उनका कुमार काल ३० वर्ष छद्मस्थ काल था। दीक्षा लेने के बाद तपस्या काल ४ माह और केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर अर्हन्त अवस्था काल ६९ वर्ष ८ माह रहा है।

३. नामकरण

बालक ने गर्भस्थ रहते समय अंधेरी रात में पास (पार्श्व) चलते

सर्प को देखकर सूचित कर पिता को प्राण हानि से बचाया अतः पार्श्वकुमार नाम रखा गया।

४. बाललीला

अतुल बल वीर्य के धारक पार्श्वप्रभु १००८ शुभ लक्षणों से विभूषित थे। सर्पलांछन वाले पार्श्वकुमार बालभाव में अनेक राजकुमारों और देवकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए उडुगण में चन्द्र की तरह चमकते रहे थे।

५. पार्श्वनाथ और कमठ का वैर

पार्श्वनाथ के जन्म के पूर्व नौ भवों से पार्श्वनाथ के जीव और कमठ के जीव में वैर चलता रहा। वैर का प्रारंभ इस प्रकार हुआ। पोदनपुर नामक नगर में विश्वभूति नामक एक शास्त्रज्ञ ब्राह्मण रहता था। कमठ और मरुभूति नामक उसके दो पुत्र थे। कमठ की पत्नी का नाम वरुणा था और मरुभूति की पत्नी का नाम वसुंधरा था। कमठ दुराचारी और पापी था। इसके विपरीत मरुभूति सदाचारी और धर्मात्मा था। मरुभूति की पत्नी वसुंधरा के निमित्त के उन दोनों सहोदर भाइयों के बीच एक ऐसी घटना घटित हुई जिसके कारण कमठ ने अपने छोटे भाई मरुभूति को मार डाला। इसी घटना के कारण कमठ और मरुभूति के जीवों में वैर प्रारंभ हो गया। पाप कर्म के कारण कमठ का जीव अनेक दुर्गतियों में भ्रमण करता हुआ ग्यारहवें भव में शम्बर नामक ज्योतिषी देव हुआ। और मरुभूति का जीव अपने पुण्य कर्म के कारण अनेक सुगतियों में उत्पन्न होकर दसवें भव में पार्श्वनाथ हुए।

कमठ का जीव कमठ की पर्याय के बाद सर्प हुआ, फिर नरक गया। तदनन्तर अजगर हो कर नरक गया, फिर भील होकर नरक गया। तदनन्तर सिंह होकर नरक गया। इसके बाद महीपाल नामक तापस होकर

ग्यारहवें भव में शम्बर नामक ज्योतिषी देव हुआ। मरुभूति का जीव मरकर हाथी हुआ, फिर स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर विद्याधर हुआ, फिर स्वर्ग में देव हुआ। तदनन्तर स्वर्ग से आकर वज्रनाभि चक्रवर्ती राजा हुआ। इसके बाद ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँ से आकर आनन्द नामक राजा हुआ। तदनन्तर आनत स्वर्ग में इन्द्र हुआ और वहाँ से च्युत होकर दसवें भव में पार्श्वनाथ हुए। इन सभी भवों में पार्श्वनाथ के जीव और कमठ के जीव में वैर चलता रहा।

६. पार्श्वनाथ के जीवन से सम्बन्धित घटनायें

आचार्य समन्तभद्र ने सर्वप्रथम स्वयम्भूस्तोत्र में ५ श्लोकों द्वारा पार्श्वनाथ का स्तवन किया है। इनमें से प्रथम श्लोक में कमठ के जीव शम्बर देव द्वारा किये गये उपसर्ग का तथा द्वितीय श्लोक में धरणेन्द्र द्वारा किये गये उपसर्ग के निवारण का वर्णन है।

तमाल वृक्ष के समान नील वर्णयुक्त, इन्द्रधनुषों सम्बन्धी बिजली रूपी डोरियों से सहित, भयंकर वज्र, आंधी और वर्षा को बिखेरने वाले तथा शत्रु शम्बर देव के वशीभूत मेघों के द्वारा उपद्रवग्रस्त होने पर भी महामना श्री पार्श्वजिन योग से विचलित नहीं हुए। क्योंकि वे महामना अर्थात् इन्द्रियों और मन पर विजय प्राप्त करने में तत्पर थे।

शम्बर नामक ज्योतिषी देव पूर्व बैर के कारण ध्यानमग्न पार्श्वनाथ पर ७ दिन तक भयंकर उपद्रव करता रहा। उसने भयंकर मेघ वर्षा के साथ ही पत्थर बरसाये, भयानक आंधी तूफान उत्पन्न किया, बिजलियाँ चमकाई और उससे जितना भी जो कुछ भी उपद्रव बन सकता था वह सब उसने किया। वे कमठ के जीव द्वारा किये गये भयंकर उपसर्ग से किञ्चितमात्र भी विचलित नहीं हुए।

उपसर्ग से युक्त ध्यानमग्न पार्श्वनाथ को धरणेन्द्र नामक नागकुमार जाति के देव ने बिजली के समान पीली कान्ति को धारण करने वाले

बड़े-बड़े फणों के मण्डल रूप के द्वारा उसी प्रकार वेष्टित कर लिया था जिस प्रकार काली संध्या के समय बिजली से युक्त मेघ पर्वत को वेष्टित कर लेता है।

जब कमठ के जीव शम्बर नामक देव ने ध्यानमग्न पार्श्वनाथ पर पूर्व वैर के कारण भयंकर उपसर्ग किया तब पूर्वकृत उपकार के कारण धरणेन्द्र नामक भवनवासी नागकुमार जाति के देव ने विक्रिया द्वारा नाग का रूप बनाया। उस नाग के बड़े-बड़े फण थे। उसने उन फणों का मण्डलाकार मण्डप बनाया और उसे ध्यानमग्न पार्श्वनाथ पर तान दिया। ऐसा करके धरणेन्द्र ने भयंकर आंधी, वर्षा आदि के उपसर्ग को दूर करने में सहयोग किया।

७. नाग-नागिन की मृत्यु कैसे हुई

जब पार्श्वनाथ १६ वर्ष के थे तब उनको एक अनुचर से ज्ञात हुआ कि वाराणसी के निकट एक उपवन में एक तापस पञ्चाग्नि तप कर रहा है। पार्श्वकुमार ने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह तापस कमठ का ही जीव है। तब उसे देखने की इच्छा से तथा उसको कुतप से विरत करने की भावना से पार्श्वकुमार हाथी पर बैठ कर उपवन में पहुँचे। वहाँ जो तापस पञ्चाग्नि तप कर रहा था वह पार्श्वनाथ का नाना अर्थात् माता का पिता महीपाल था। वह पञ्चाग्नि तप में लीन था। इस तप में तापस अपने चारों ओर अग्नि जला कर उसके बीच में बैठ जाता है और उसकी दृष्टि ऊपर सूर्य की ओर रहती है। इसे पञ्चाग्नि तप कहते हैं।

आचार्य गुणभद्र के अनुसार वह तापस अग्नि में डालने के लिए एक मोटी लकड़ी को काट रहा था। यह देख कर पार्श्वकुमार ने उस तापस से कहा कि इस लकड़ी को मत काटो। इसके अन्दर नाग-नागिन बैठे हैं। किन्तु वह तापस नहीं माना और उसने लकड़ी को काट डाला। तब लकड़ी को काटते समय उसके अन्दर बैठे हुए नाग-नागिन के दो

टुकड़े हो गये। इस बात को गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण में इस प्रकार लिखा है-

'नागी नागश्च तच्छेदात् द्विधाखण्डमुपागतौ। ७३/१०३

पार्श्वनाथ चरित के रचयिता वादिराज सूरि के अनुसार पञ्चाग्नि तप करते समय अग्नि में जलती हुई लकड़ी के अन्दर बैठे हुए नाग-नागिन जल रहे थे। पार्श्वनाथ के कहने पर तापस को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इस लकड़ी के अन्दर नाग-नागिन हो सकते हैं। तब पार्श्वकुमार ने लकड़ी को काट कर उसमें से अध जले नाग-नागिन को बाहर निकाला था।

८. तापस मर कर कहाँ उत्पन्न हुआ

पूर्व भवों का वैरी कमठ का जीव महीपाल नामक तपस्वी पञ्चाग्नि तप कर रहा था। पञ्चाग्नि तप के लिए जो लकड़ियाँ जल रही थीं उनमें से एक लकड़ी के भीतर बैठे नाग और नागिन भी जल रहे थे। श्री पार्श्वजिन ने अवधिज्ञान से इस बात को जानकर इस तपस्वी से कहा कि हिंसामय कुतप क्यों कर रहे हो। इस लकड़ी के अन्दर नाग-नागिन जल रहे हैं। इस बात को सुनकर वह तपस्वी क्रोधित होकर बोला कि ऐसा नहीं हो सकता है। आपने कैसे जान लिया कि इस लकड़ी के भीतर नाग-नागिन बैठे हैं। तब उस तापस को विश्वास दिलाने के लिए कुल्हाड़ी मंगाकर लकड़ी को काटा गया और पार्श्वकुमार ने जलती हुई लकड़ी से अधजले नाग-नागिन को बाहर निकाला। श्री पार्श्वजिन की इस बात से वह तापस क्रोधित हो गया कि इन्होंने मेरी तपस्या में विघ्न उपस्थित कर दिया है। वह पूर्व भवों का वैरी तो था ही, किन्तु इस घटना से उसने श्री पार्श्वजिन के साथ और भी अधिक वैर बाँध लिया।

९. णमोकार मंत्र का माहात्म्य

पार्श्वकुमार ने नाग-नागिन को णमोकार मंत्र सुनाया था।

१०. धरणेन्द्र-पद्मावती सात दिन तक क्यों सोते रहे

ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर पूर्व वैरी कमठ के जीव द्वारा सात दिन तक भयंकर उपद्रव होता रहा और धरणेन्द्र-पद्मावती को कुछ पता ही नहीं चला। संभवतः आठवें दिन धरणेन्द्र-पद्मावती जागे और दौड़े-दौड़े आकर पार्श्वनाथ के ऊपर हो रहे उपसर्ग को दूर किया। यहाँ जिज्ञासा है कि यदि धरणेन्द्र-पद्मावती न आते तो क्या पार्श्वनाथ पर दीर्घकाल तक उपसर्ग चलता रहता। और क्या तब तक पार्श्वनाथ को केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता। नहीं, ऐसा नहीं है। उपसर्ग तो दूर होना ही था। लेकिन उसका श्रेय धरणेन्द्र-पद्मावती को अवश्य मिल गया।

११. तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर उपसर्ग क्यों

वर्तमान में हुण्डापसर्पिणी काल चल रहा है। असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के बीत जाने पर एक बार हुण्डापसर्पिणी काल आता है। इस काल में कुछ ऐसी अनहोनी बातें होती हैं जो सामान्य रूप से कभी नहीं हुई। जैसे तीर्थंकरों पर उपसर्ग कभी नहीं होता है, परन्तु पार्श्वनाथ पर उपसर्ग हुआ। तीर्थंकरों के पुत्री का जन्म नहीं होता है, फिर भी ऋषभनाथ के ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दो पुत्रियों का जन्म हुआ। इत्यादि और भी कई बातें हैं जो हुण्डापसर्पिणी काल के प्रभाव से घटित हुई हैं। और तीर्थंकर पार्श्वनाथ पर उपसर्ग भी एक ऐसी ही घटना है।

१२. सर्पफण युक्त मूर्तियों का औचित्य

तीर्थंकर पार्श्वनाथ की अधिकांश मूर्तियाँ सर्प-फणमण्डप युक्त है। किन्तु कुछ मूर्तियाँ सर्पफण रहित भी उपलब्ध होती हैं। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि तीर्थंकरों की जो मूर्तियाँ प्रतिष्ठित होकर मन्दिरों में विराजमान की जाती हैं वे केवलज्ञान अवस्था अथवा अर्हन्त अवस्था को प्राप्त तीर्थंकरों की होती है। किन्तु धरणेन्द्र ने ध्यानस्थ पार्श्वनाथ के ऊपर

जो फणामण्डप बनाया था वह ध्यानस्थ अवस्था के समय की बात है। परन्तु कमठ के जीव द्वारा किये गये उपसर्ग के दूर हो जाने पर तथा शम्बर देव द्वारा पार्श्वनाथ के चरणों में नमस्कार करने और अपने अपराधों की क्षमायाचना करने के बाद धरणेन्द्र ने पार्श्वनाथ के ऊपर से स्वनिर्मित फणामण्डप को भी हटा लिया होगा। उसी के बाद फणामण्डप रहित अवस्था में पार्श्वनाथ को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। अत: केवलज्ञान सहित अथवा अर्हन्त अवस्था को प्राप्त पार्श्वनाथ की मूर्ति में फणामण्डप बनाने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है।

१३. पद्मावती के सिर पर पार्श्वनाथ की मूर्ति का औचित्य

वर्तमान में पद्मावती देवी की जितनी मूर्तियाँ पाई जाती हैं उन सब के सिर पर भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्ति विराजमान रहती है। यह भी एक परम्परा की बात है। यहाँ विचारणीय बात यह है कि क्या पद्मावती के सिर पर पार्श्वनाथ की मूर्ति को विराजमान करना आगम सम्मत है। ऐसा माना जाता है कि उपसर्ग के समय पद्मावती ने पार्श्वनाथ को उठाकर अपने सिर पर बैठा लिया था। इसी मान्यता के आधार पर अपने सिर पर भगवान् पार्श्वनाथ को बैठाये हुए पद्मावती देवी की मूर्तियों के निर्माण की परम्परा पता नहीं कब से प्रचलित है और किसके द्वारा प्रचलित की गई? यह सब विचारणीय है। जैनागम में स्पष्ट विधान है कि स्त्री को साधु या मुनि से सात हाथ दूर रहना चाहिए। जैनागम के ऐसे विधान के होते हुए भी पद्मावती के सिर पर भगवान् पार्श्वनाथ को बैठाने का औचित्य सिर्फ उपसर्ग के समय माँ पद्मावती द्वारा पार्श्व की रक्षा है। ऐसे समय में उनका सिर पर बैठना गलत नहीं हो सकता।

यहाँ यह स्मरणीय है कि आचार्य समन्तभद्र ने स्वयम्भूस्तोत्र में भगवान् पार्श्वनाथ के स्तवन में उपसर्ग निवारण के लिए धरणेन्द्र का नाम तो लिया है किन्तु वहाँ पद्मावती का नाम कहीं नहीं है। आचार्य गुणभद्र

और वादिराजसूरि के अनुसार पार्श्वनाथ पर हो रहे उपसर्ग निवारण के लिए धरणेन्द्र और पद्मावती दोनों आये अवश्य थे, किन्तु वहाँ भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि पद्मावती ने पार्श्वनाथ को अपने सिर पर बैठा लिया था। 'इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये' इस पंक्ति के आधार पर पद्मावती रक्षार्थ आयी तभी से पार्श्वप्रभु की अधिष्ठायिका बनी।

इसमें सन्देह नहीं है कि तीर्थंकर पार्श्वनाथ एक ऐतिहासिक पुरुष है। १०० वर्ष की आयु पूर्ण होने पर उन्होंने बिहार में स्थित सम्मेद शिखर से निर्वाण प्राप्त किया था। यद्यपि अजितनाथ आदि अन्य १९ तीर्थंकरों ने भी सम्मेद शिखर से निर्वाण प्राप्त किया है, किन्तु सम्मेद शिखर से निर्वाण प्राप्त करने वाले पार्श्वनाथ अन्तिम तीर्थंकर है और उनके नाम पर सम्मेद शिखर को पारसनाथ हिल के नाम से भी जाना जाने लगा है। इस बात को पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध करने के लिए एक प्रमाण के रूप में उपस्थित किया जा सकता है। परन्तु इस विषय में यह अन्वेषणीय है कि सम्मेद शिखर का नाम पारसनाथ हिल कब से हुआ। पार्श्वनाथ के निर्वाण काल से ही या कालान्तर में उक्त नाम प्रचलित हुआ।

शंखेश्वर पार्श्वनाथ के चमत्कार

दयालु, करुणामय, तारणहार की हमारे पर भी एक मेहर नजर पड़े। भगवान पार्श्व के उपकारों का, गुणों का वर्णन हम न तो लेखनी से कर सकते हैं न शब्दों से, न ही इस छोटी-सी जुबान से, हम तो उनके चरणों की धूल भी नहीं हैं।

पार्श्वनाथ के धर्म प्रभावना, उपदेशों का उक्त समय व्यापक प्रभाव था। दक्षिण भारत के नागराजतंत्र व पूर्वोत्तर के अनेक राजवंश पार्श्वनाथ भगवान को अपना इष्ट मानते थे।

मगध प्रदेश, वैशाली नगरी, काशी कौशल के 10 गणराज, श्रावस्ती नगरी, कौशम्बी नगर, कंपीलपुर, सुग्रीव नगर आदि प्रदेश राजाओं को उपदेश देकर धर्मानुरागी बनाया।

बौद्ध धर्म में अनेक स्थानों पर पार्श्वनाथ भगवान के चातुर्याम धर्म की चर्चा है। महात्मा बुद्ध भी पार्श्वनाथ के अनुयायी थे और तथागत बुद्ध ने पहले चातुर्याम धर्म मार्ग ग्रहण किया जो परमात्मा भगवान ने स्थापित किया था। इसी आधार पर तथागत बुद्ध ने आष्टांगिक धर्ममार्ग का प्रवर्तन किया। वेदों में भी पार्श्वनाथ भगवान का जिक्र आता है।

पार्श्वनाथ भगवान के उपदेशों का प्रभाव सम्पूर्ण भारत से लेकर नेपाल, चीन, बर्मा, सिंगापुर, अफगानिस्तान, ईरान, इराक, रूस तक था। आज भी इन स्थानों पर पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमाओं के अवशेष व शिलालेख मिलते हैं। परमात्मा पार्श्वनाथ का नाम स्मरण अन्य धर्मावलम्बी बड़ी श्रद्धा से लेते हैं, क्योंकि उनके पूर्वज के वे इष्ट देव थे।

स्तुति द्वारा महिमागान

आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना स्तुति है। स्तुति स्तोत्रों से होती है। स्तोत्र संस्तव हैं और 'संस्तवनम् संस्तवः' अर्थात् सम्यक प्रकार से स्तवन करना संस्तव है।

'उवसग्गहरपासं', पहला ऐतिहासिक स्तोत्र है जिसके पांचों रूप यानी ५ गाथा, ७ गाथा, १० गाथा, ११ गाथा और २७ गाथाएं है। इसमें तीर्थंकर के साथ इसके शासन देवता की लक्षणा से स्तुति है। इसमें पार्श्वप्रभू से सम्यक्रत्न रूप बोधि और अजर-अमर पद की कामना है और कर्ममल से रहित पार्श्वनाथ को विषधर के विष के विनाशक और कल्याणकारक कहा गया है। जो मनुष्य इस स्तोत्र को धारण करता है उसके ग्रहों के दुष्प्रभाव, रोग और ज्वर शान्त होते हैं और जो पार्श्व प्रभू को प्रणति-निवेदन करता है, उसके दुःख संताप मिटते हैं। इस स्तोत्र को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार से कल्याणकारक बताया गया है। इस स्तोत्र के कर्त्ता भद्रबाहु कहे गए हैं। देवेन्द्रस्तव दूसरी ऐतिहासिक रचना है जो उसके अन्तर्साक्ष्य से ऋषिपालित की कृति है।

आचार्य अभयदेवसूरि की **जयतिहुअण स्तोत्र** तीसरी रचना कही जा सकती है। जो ३० गाथाओं में है। मानतुंगसूरि का **श्री नमिऊण स्तोत्र** तथा अज्ञातकर्तृत्व के **श्रीभयहर स्तोत्र** और श्री गोड़ी पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि प्राकृत भाषा में निबद्ध स्तोत्र पश्चात्कालीन हैं।

नित्य आराधना

(1) सुबह-शाम प्रतिक्रमण

(2) जिनपूजा तथा कम से कम एक बार मूलनायक भगवान का चैत्यवंदन।

(3) कम से कम एकाशन का पच्चक्खाण।

(4) भूमि शयन।

(5) हरेक यात्रा में मूलनायक की 3 प्रदक्षिणा।

(6) तीर्थ के अनुसार मूलनायक भगवान की माला व जाप।

जिस तीर्थ की भी यात्रा की जाए उस तीर्थ के मूलनायक भगवान की श्रद्धापूर्वक सेवा, पूजा, भक्ति आदि करनी चाहिए। जितना कर सकें, उतनी आराधना करनी चाहिए।

१०८ पार्श्वनाथ भगवान के नाम

क्र.	नाम	गाँव	क्र.	नाम	गाँव
1	श्री शंखेश्वर	शंखेश्वर	26	श्री गीरुआ	पंजाब
2	श्री अंतरिक्ष	सीरपुर	27	श्री गोडी	आहोर
3	श्री अमीझरा	वडाली	28	श्री गंभीरा	गांभु
4	श्री आशापुरण	नूनगाम	29	श्री घृतकल्लोल	सुथरी
5	श्री अशोक	चंपा	30	श्री धीया	पाटण
6	श्री अजाहरा	अजारा	31	श्री चेल्लण	मेवाड़
7	श्री अवंति	उज्जैन	32	श्री चारूप	चारूप
8	श्री अलौकिक	हासामपुरा	33	श्री चोरवाडी	चोरवाड
9	श्री कलिकुंड	धोलका	34	श्री चंपा	पाटण
10	श्री कल्पद्रुम	मथुरा	35	श्री भद्र	रापर
11	श्री करेडा	काछोली	36	श्री चिंतामणि	मुम्बई
12	श्री कच्छुलिका	काछोली	37	श्री छाया	महेन्द्रपर्वत
13	श्री कल्याण	वीसनगर	38	श्री जगवल्लभ	कुम्बोजगिरि
14	श्री कल्हारा	भरूच	39	श्री जयवर्द्धने	जयपुर
15	श्री काभिका	खंभात	40	जीरावला	जीरावला
16	श्री केशरिया	भद्रावती	41	जोटावा	धीणोज
17	श्री कोका	पाटण	42	श्री टांकला	पाटण
18	श्री कंकण	पाटण	43	श्री डोराला	पालनपुर
19	श्री कंबोइया	कंबोई	44	श्री डोकरिया	प्रभासपाटण
20	श्री कुर्कटेश्वर	कुकड़ेश्वर	45	श्री द्वारा	मूलीगांव
21	श्री कुंकुमरोल	जालौर	46	श्री दादा	बेडा
22	श्री कामितपूरण	उन्हेल	47	श्री दोलती	पाटण
23	श्री खामणा	भोपावर	48	श्री त्रिभुवनभानु	अहिछत्रा
24	श्री खोया	कोयागाम	49	श्री नवलखा	पाली
25	श्री गाडलिया	मांडण	50	नवखंडा	घोघा

क्र.	नाम	गाँव	क्र.	नाम	गाँव
51	श्री नवपल्लव	मांगरोल	80	श्री स्फुलिंग	विजापुर
52	श्री नवफणा	आबुजी	81	मुलताना	मुलतान
53	श्री नागफणा	चित्तौड़	82	श्री रावण	अलवर
54	श्री नरोड़ापद्मावती	नरोड़ा	83	श्री संकटहरण	जैसलमेर
55	श्री नाकोड़ा	नाकोड़ाजी	84	श्री लोढ़ण	डभोई
56	श्री नागेश्वर	नागेश्वर	85	श्री लोद्रवा	लोद्रवा
57	श्री पल्लवीया	पालनपुर	86	श्री लोहाणा	लोहाणा
58	श्री पोसीना	पोसीना	87	श्री वरकाणा	करवाणा
59	श्री भव्यपुस्कारावर्तक	वाराणसी	88	श्री विघ्नहरा	अंतरिक्षजी
60	श्री पंचासरा	पाटण	89	श्री विश्वचिंतामणि	खंभात
61	श्री पुरुषादानीय	अहमदाबाद	90	श्री श्रीवही	जीर्णमालवा
62	श्री पोसालाय	ऐरणपुर	91	श्री सहस्त्रफणा	पाटण
63	श्री पातालचक्रवर्ती	महाकाल	92	श्री सप्तफणा	भणसाल
64	श्री फलवृद्धि	मेड़तारोड़	93	श्री सेसली	सेसली
65	श्री बरेजा	बरेजा	94	श्री जशोधरा	भरुच
66	श्री वहि	मन्दसौर	95	श्री शामला	पाटण
67	श्री भटेवा	चाणस्मा	96	श्री सोगडीया	नाडूलाई
68	श्री भाभा	जामनगर	97	श्री शेरीसा	शेरीसा
69	श्री भीलडीया	भिजड़ी	98	श्री सोरठा	बल्लभीपुर
70	श्री भीडभंजन	चाणस्मा	99	श्री स्वयंभु	कापरडा
71	श्री भवभयहर	खंभात	100	श्री स्थंभन	खंभात
72	श्री मनमोहन	कंबोई	101	श्री सोरीडिया	सिरोही
73	श्री मक्षीया	मक्षीजी	102	श्री सेसफणा	सणवा
74	श्री मनोरथ	चित्तौड़	103	श्री सोमचिंतामणि	खंभात
75	श्री मनोरंजन	मेहसाणा	104	श्री सुलतान	सिद्धपुर
76	श्री मनवांछित	नेर	105	श्री सुरजमंडन	सुरत
77	श्री भूलेवा	अहमदाबाद	106	श्री शंकलपुरा	शंकलपुर
78	श्री मोढेरा	मोढेरा	107	श्री हमीरपुरा	मीरपुर
79	श्री मुहरी	टिटोई	108	श्री उपसर्गहर	नगपुरा

धर्मशाला के संपर्क सूत्र

शत्रुंजय तीर्थ

एस.टी.डी. कोड : 02848

क्र.	नाम	फोन नं.
1.	108 जैन तीर्थ दर्शन	252492-242797
2.	आगम मंदिर	252195
3.	अंकी बाई चेरीटेबल ट्रस्ट	252603
4.	अमृत तीर्थ आराधना भवन	252407
5.	आरीसा भवन जैन धर्मशाला	252157
6.	आनंद जी कल्याण जी पेढी	243348, 252148, 252312
7.	आनंद भवन जैन धर्मशाला	252565
8.	आयंबिल भवन जैन धर्मशाला	252830
9.	ओसवाल यात्रिक भवन	252240, 251001
10.	ओमशांति ट्रस्ट	242921
11.	आत्मवल्लभ सादड़ी भवन	242259, 253268
12.	मंडार भवन (गिरिवर सोसायटी)	252135
13.	राजेन्द्र जैन भवन	252209, 252749
14.	शत्रुंजय विहार जैन धर्मशाला	242129
15.	सिद्धक्षेत्र जैन श्राविका श्रम	252196
16.	साबरमती जैन यात्रिक भवन	252709
17.	सिद्धाचल अणगार जैन ट्रस्ट	252412
18.	सीमंधर स्वामी जैन देरासर	243018
19.	सुराणी भवन जैन धर्मशाला	252631
20.	सूर्यकमल जैन धर्मशाला	242349
21.	सोना रूपा जैन धर्मशाला	252376

क्र.	नाम	फोन नं.
22.	सौधर्म निवास जैन धर्मशाला	252333
23.	हरि विहार जैन धर्मशाला	252653
24.	हडियानगर जैन धर्मशाला	242591, 242590
25.	हिम्मत नगर जैन धर्मशाला	252549
26.	हीरा शांता जैन यात्रिक ग्रह	253256
27.	सांडेराव जैन धर्मशाला	252344
28.	बिम्मत यात्रिक भवन	242957, 242108
29.	बेतला वीर जैन धर्मशाला	252884
30.	के. पी. संघवी जैन धर्मशाला	252493
31.	धनसुख विहार जैन धर्मशाला	252261
32.	पुरबाई जैन धर्मशाला	252145
33.	पंजाबी जैन धर्मशाला	252141
34.	मुक्ति मिलय धर्मशाला	252165
35.	दादाबाड़ी राजेन्द्र विहार	252248
36.	दिगम्बर जैन धर्मशाला	252547
37.	दिपावली जैन दर्शन ट्रस्ट	242341
38.	लुंकड भवन चेरीटेबल ट्रस्ट	252609
39.	लुणावा मंगल भवन ट्रस्ट	252316
40.	के. एन. शाह चेरीटेबल ट्रस्ट	243089
41.	कैलाश स्मृति धर्मशाला	252799
42.	नरशी नाथा जैन धर्मशाला	252186
43.	मोती सुखीया धर्मशाला	25177
44.	नंदा भवन	252356, 252385
45.	जेतावाड़ा धर्मशाला	243067
46.	पालनपुर यात्रिक भवन	242999
47.	कनक रतन विहार	251046, 252869
48.	परमार भवन	252899
49.	हड़िया भवन	242591
50.	प्रभागिरी दर्शन	251213, 243020

क्र.	नाम	फोन नं.
51.	प्रभव हेम गौशाला	251003
52.	एस. पी. शाह जैन धर्मशाला	242190
53.	बनास कांठा धर्मशाला	252355
54.	कच्छी विशा ओसवाल भवन	252137
55.	कनक बेननुँ रसोडूँ	253339, 242578
56.	केशवजी नायक चेरीटी ट्रस्ट	242578, 252647, 252166
57.	केशरियाजी जैन धर्मशाला	252213
58.	कोटावाली जैन धर्मशाला	252662
59.	कंकुबाई जैन धर्मशाला	252598
60.	उमाजी भवन धर्मशाला	252625
61.	भिवान्द्री भवन धर्मशाला	252810
62.	भीमजी बाई चेरीटेबल ट्रस्ट	253237
63.	खुशाल भवन जैन धर्मशाला	252873
64.	गिरिराज ज्ञान मंदिर ट्रस्ट	253230
65.	गिरिविहार	252258
66.	घंटाकर्ण महावीर जैन ट्रस्ट	252234, 252413
67.	नवल संदेश	243068
68.	108 मंत्रेश्वर पार्श्वधाम	243367
69.	विमल भवन	243058
70.	देवगिरि आराधना सोसा	243083
71.	के. एस. शाह चेरीटेबल ट्रस्ट	243089
72.	आनंद भवन (अन्नक्षेत्र)	242964
73.	धानेरा भवन	242174
74.	पाँच बंगला	252476
75.	वापीवाला काशी केशर	252293
76.	ढढ्ढा भवन	252453
77.	सांचोरी भवन	242276
78.	राजकोट वाली धर्मशाला	253178

क्र.	नाम	फोन नं.
79.	घनापुरा धर्मशाला	252209
80.	प्रकाश भवन	252348
81.	बाबू पन्नालाल	252512, 252977
82.	सादड़ी भवन	253268, 242259
83.	रणशी देवराज	252211
84.	जीवन निवास	252197
85.	बाबू साहेब जैन देरासर	242973
86.	मोक्षधाम सिद्ध शिला	243027, 243214
87.	चन्द्रदीपक जैन धर्मशाला	252235
88.	पन्ना रूपा	252391
89.	बैंगलोर भवन	252389
90.	महाराष्ट्र भवन	252193
91.	वीसा नीमा	252279
92.	विद्याविहार बाली भवन	252498
93.	धानेश भवन	242174
94.	पींडवाड़ा भवन (प्रेम विहार)	252930
95.	तख्तगढ मंगल भवन	252167
96.	डीसावाली जैन धर्मशाला	252569
97.	मगन मूलचंद	252279
98.	वाव पथक	253253
99.	लावण्य विहार	252578
100.	चांद भवन	242137
101.	ब्रह्मचारी आश्रम	242248
102.	वर्धमान जैन मंदिर ट्रस्ट	252275
103.	यशोविजय जी जैन आराधना ट्रस्ट	242433
104.	नित्यचंद्र दर्शन	252181
105.	शत्रुंजय दर्शन	252512
106.	यतीनु भुवन	252237
107.	वर्धमान महावीर जैन रीलीजीयस	242275

क्र. नाम	फोन नं.
108. जंबुद्वीप	242022, 252307
109. मंडार भवन (108) जैन आराधना	252561
110. मेरु विहार	242984, 252784
111. पादरली भवन	252486
112. भक्ति विहार	252515
113. विशाल जैन म्यूजियम	252832
114. श्री कल्याण सौभाग्य मुक्ति भवन	253621
115. श्री जैन विशा हुमड़ धर्मशाला	253623
116. श्री महाविदेह भिन्नमाल धाम	243018
117. श्री सात चौवीसी एकड़ा उत्कर्ष ट्रस्ट	253399
118. श्री कच्छ वागड़ सात चौवीसी जैन धर्मशाला	252457
119. श्री संभव लब्धि धाम (गिरिराज सोसायटी)	243451, 243452
120. श्री झालावाड़ जैन संघ (आदिनाथ रत्नत्रय आराधना धाम)	243396
121. श्री वच्छराज मावजी बोथरा (कमलमंदिर)	251042
122. श्री भिन्नमाल भवन	243058
123. श्री समदड़ी भवन	253619
124. श्री मणिभद्र वीर शांति सेवा ट्रस्ट	243199
125. श्री धनवासी टुंक आबुनुं जिनालय	242973
126. श्री थराद जयंतसेन विहार धर्मशाला	252854
127. शत्रुंजय तीर्थ श्री आदिनाथ भगवान	252312/252248
128. शत्रुंजय के तीर्थ श्री सहस्रफणा पार्श्व	252215

गिरनार तीर्थ

एस.टी.डी. कोड : 02852

क्र.	नाम	फोन नं.
1.	कदम्बगिरी तीर्थ	252235, 280106
2.	गिरनार तीर्थ	650179, 2621419
3.	नेमि गुण गिरनार जैन ट्रस्ट गिरनार	2655360

शंखेश्वर तीर्थ

एस.टी.डी. कोड : 02733

क्र.	नाम	फोन नं.
1.	शंखेश्वर तीर्थ	273324, 273514
2.	शंखेश्वर भक्ति विहार	273325/273444
3.	शंखेश्वर विजयकलापूर्ण सूरि आराधना स्मारक ट्रस्ट	273150
4.	हालारी जैन धर्मशाला शंखेश्वर	273310
5.	कच्छी भवन अतिथी गृह	273363/273515
6.	आगम मंदिर शंखेश्वर	273323/273335
7.	जैन भोजन शाला शंखेश्वर	273331
8.	समरी विहार शंखेश्वर	273329
9.	पालनपुर वाली धर्मशाला शंखेश्वर	273342
10.	नवकार धर्मशाला	273357
11.	यात्रिक भवन	273344
12.	पद्मावती मंदिर	273299
13.	राघनपुर वाली धर्मशाला	273315

प्राकृत भारती अकादमी
१३-ए, मेन मालवीय नगर रोड
गुरुनानक पथ, मालवीय नगर, जयपुर

ISBN No. 13-978-93-81571-08-8